खंड 2 – राजनैतिक प्रक्रियाएं

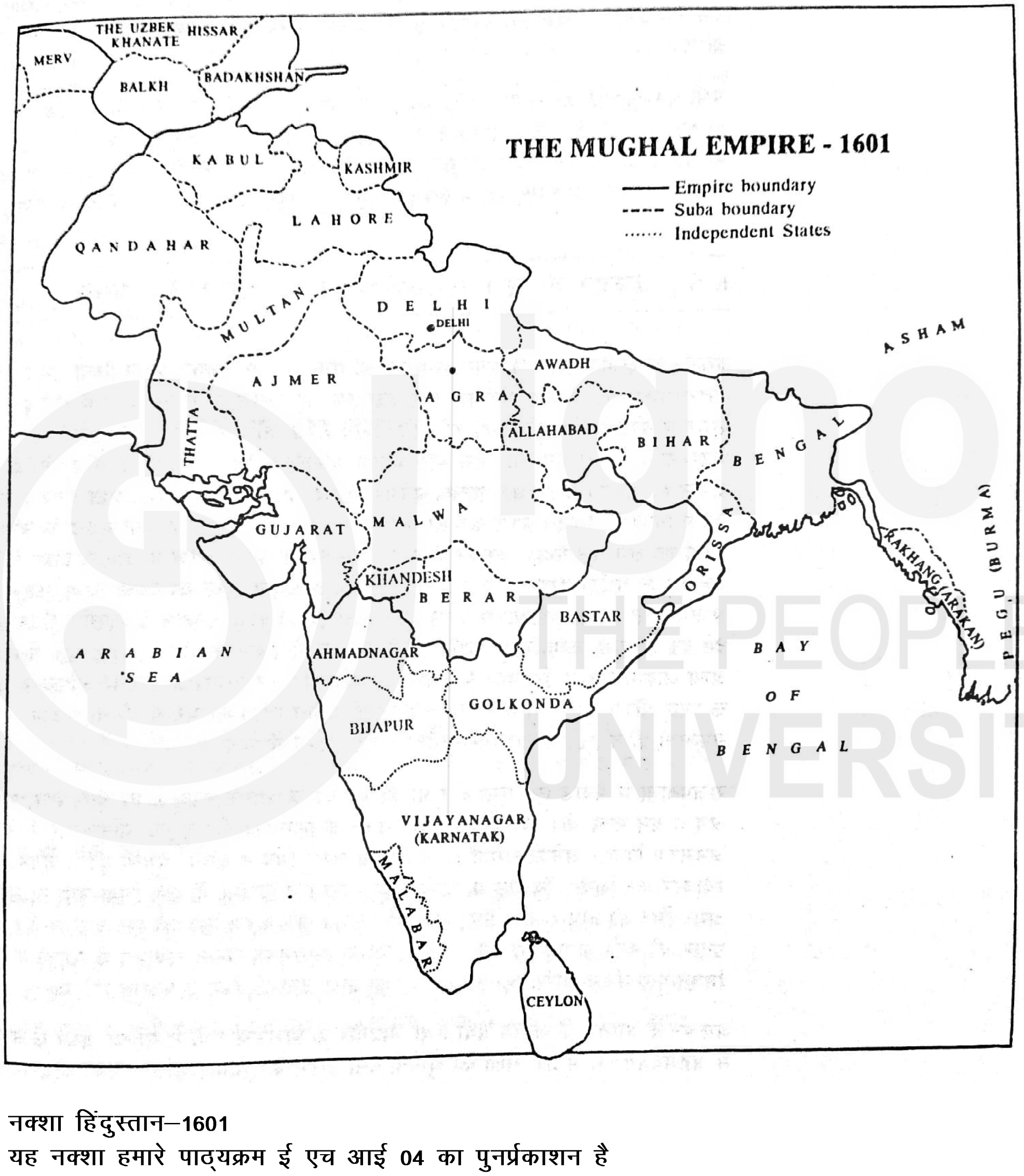

नक्शा हिंदुस्तान–1601

यह नक्शा हमारे पाठ्यक्रम ई एच आई 04 का पुनर्प्रकाशन है

भारत भौतिक मानचित्र

साभार: **Survey of India: https://www.surveyofindia.gov.in/pages/physical-map-of-india**

इकाई 3 दक्कन में राजनीतिक गतिविधियां और मराठों का उदय*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 दक्कन, बहमनी के उपरांत

3.2.1 अहमदनगर

3.2.2 बीजापुर

3.2.3 गोलकुंडा

3.2.4 संघर्ष और सहयोग

3.2.5 मुगलों का आगमन

3.2.6 प्रशासनिक संरचना

3.3 मराठों का उदय

3.4 मराठा शक्ति का सुदृढ़ीकरण

3.4.1 शाहजी

3.4.2 शिवाजी

3.5 मुगल–मराठा संबंध

3.6 मराठों की प्रशासनिक संरचना

3.6.1 केंद्रीय प्रशासन

3.6.2 प्रांतीय प्रशासन

3.6.3 सैन्य संगठन

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम तीन राज्यों पर ध्यान केंद्रित करते हुए दक्कन क्षेत्र के इतिहास पर चर्चा करेंगे। वे तीन राज्य है – बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर। साथ ही साथ हम मराठा शक्ति के उदय के इतिहास को भी देखेंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान सकेंगे:

- दक्कन के राज्यों: बाजीपुर, गोलकुंडा और अहमदनगर में राजनीतिक गतिविधियां;
- मराठा शक्ति का उदय;
- इन राज्यों के एक दूसरे के साथ और बाद में मराठों के साथ संबंध;

*डॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

- इन राज्यों का प्रशासनिक ढांचा;
- मुगलों के इन दक्कन राज्यों तथा मराठो के साथ, विशेष रूप से शिवाजी के साथ बहुत तनावपूर्ण संबंध; और
- विशेष रूप से शिवाजी के शासनकाल के दौरान मराठों का प्रशासनिक और सैन्य संगठन।

3.1 प्रस्तावना

दक्कन एक बहुत ही अनोखा भू–क्षेत्र है जहाँ पठार का ऊपरी भाग इसकी परिभाषित विशेषता है। उत्तर में सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाएं दक्कन की उत्तरी सीमा को परिभाषित करती हैं और पश्चिमी घाट दक्कन के लिए पश्चिमी सीमा के चिहनक हैं। बंगाल की खाड़ी की ओर जाने वाला क्रमिक ढलान दक्कन की पूर्वी सीमा है। दक्षिणी सीमा को परिभाषित करना मुश्किल है क्योंकि दक्कन शब्द संस्कृत शब्द दक्षिण से ही उत्पन्न हुआ है। उपजाऊ मैदानों वाली कई महत्वपूर्ण नदियाँ हैं, जो समय–समय पर बड़ी और छोटी राजनीतिक संस्थाओं को बनाए रखीं। (पाठ्यक्रम **बी एच आई सी 107** देखें)। इसका अलग भूगोल, विशेष रूप से उत्तर में इसकी खड़ी ऊंचाई, अक्सर उत्तरी भारत की राजनीतिक शक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण को प्रतिबंधित करती रही है। उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों के शासकों की आकांक्षाओं का इस क्षेत्र की शक्तियों द्वारा नियमित रूप से विरोध किया जाता रहा। यह इकाई बहमनी सल्तनत के पतन के बाद उभरे तीन महत्वपूर्ण राज्यों पर संक्षेप में चर्चा करेगी। 16वीं सदी के मध्य से 18वीं सदी के मध्य तक और उसके बाद के दक्कन के इतिहास में मराठों की महत्वपूर्ण भूमिका की जांच किए बिना चर्चा पूरी नहीं की जा सकती है, जो शुरू में एक स्वतंत्र रियासत बनाने के लिए दक्कन राज्यों के खिलाफ लड़ रहे थे। मराठा इसके उपरांत मुगलों के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक दक्कन का बड़ा हिस्सा मुगलों द्वारा कब्जा कर लिया गया था। यह इकाई आपको शिवाजी और मराठा प्रशासन के बारे में भी बताएगी।

इस क्षेत्र के लिए स्रोतों का उल्लेख इकाई 1 और 2 में किया गया है। इस इकाई में दक्कन की राजनीति के आंतरिक मामलों में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों की उपस्थिति और भूमिका का भी संक्षेप में उल्लेख किया जाएगा।

3.2 दक्कन, बहमनी के उपरांत

बहमनी साम्राज्य धीरे–धीरे विघटित हो गया और इससे पांच स्वतंत्र रियासतें उभरीं – अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर और बरार। हालाँकि, बीदर और बरार अपनी स्वतंत्रता को लंबे समय तक बरकरार नहीं रख सके और पड़ोसी शक्तिशाली राज्यों में विलीन हो गए। इन राज्यों में आपसी वैवाहिक संबंध भी थे जो अक्सर राज्यों के मामलों को जटिल बनाते थे। 17वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में मराठा महत्वपूर्ण राजनीतिक खिलाड़ी के रूप में उभरे, जो अक्सर इन रियासतों और मुगलों के बीच संघर्ष का फायदा उठाते थे।

3.2.1 अहमदनगर

बहमनी सल्तनत से उत्पन्न होने वाले पहले राज्यों में से एक अहमदनगर था। इस पर निजाम शाही वंश का शासन था। कोंकण क्षेत्र से शुरूआत करते हुए, बहमनी साम्राज्य के प्रधानमंत्री मलिक हुसैन के पुत्र मलिक अहमद निजामुल मुल्क बाहरी ने अलग राज्य बनाना शुरू किया। इसका क्षेत्र तटीय मैदान से लेकर खानदेश की सीमा तक फैला हुआ था, जिसमें उत्तर में पूना से लेकर दक्षिण में शोलापुर तक तथा दौलताबाद का प्रसिद्ध किला शामिल था। पड़ोसी राज्य के साथ तकरार एक नियमित विशेषता थी। 1511 में बीजापुर ने अहमदनगर से शोलापुर को छीन लिया, जबकि 1565 में बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, और बीदर के शासकों ने एक साथ मिलकर विजयनगर के रामराजा को हराया था। इस बीच हुसैन निजाम शाह ने अपनी बेटी चांद बीबी की शादी अली आदिल शाह से करवा कर बीजापुर के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत किया। मुर्तजा 1565 में अपने पिता हुसैन का उत्तराधिकारी बना और अपनी स्थिति को मजबूत करने के बाद उसने 1588 में बरार को अपने राज्य में मिला लिया। दुर्भाग्य से उसके बेटे हुसैन ने 1588 में उसकी हत्या कर दी, लेकिन जल्द ही 1589 में हुसैन की भी हत्या कर दी गई।

चांद बीबी, जो अब विधवा थी, ने बहादुर को गद्‌दी पर बैठने में मदद की लेकिन राज्य की बागडोर अपने हाथों में रख ली। इस बीच अकबर के शासनकाल में मुगलों ने दक्कन के मामलों में रुचि लेना शुरू कर दिया और अहमदनगर, जिस पर चांद बीबी का शासन था, के साथ युद्ध शुरू कर दिया। हालांकि चाँद बीबी ने मुगलों को बरार सौंप दिया लेकिन अकबर अहमदनगर राज्य में और विस्तार चाहता था। चाँद बीबी ने बहादुरी से लड़ाई लड़ी लेकिन अंततः अहमदनगर को मुगलों को सौंपने का फैसला किया, जिस कारण अहमदनगर के कुलीन क्रोधित हो गए और चाँद बीबी को मार डाला, परन्तु अहमदनगर को मुगलों से नहीं बचा सके। हालांकि, अहमदनगर पर कब्जा करने से रियासत का अंत नहीं हुआ। बाद में मलिक अंबर के सक्षम नेतृत्व में हम निजामशाही वंश के अस्थायी पुनरूत्थान को देखते हैं। इसके तुरंत बाद मलिक अंबर ने मुर्तजा निजाम शाह की हत्या कर दी और अपने ही बेटे को शासक बना दिया। जहाँगीर के शासनकाल के दौरान मुगल दबाव जारी रहा लेकिन मुगल सिंहासन पर शाहजहाँ के आने के साथ ही निर्णायक मोड़ आ गया। शाहजहाँ जब राजकुमार खुर्रम था, तब उसने अहमदनगर की सेना को हराया था और अहमदनगर किले और बालाघाट पर कब्जा कर लिया, जिसे जल्द ही मलिक अंबर ने पुनः प्राप्त कर लिया था। हालांकि मलिक अंबर की मृत्यु के बाद, मराठों ने अहमदनगर के मामलों को नियंत्रित करना शुरू कर दिया। अंत में, शाहजहाँ ने क्षेत्रीय सत्ता संघर्षों का लाभ उठाते हुए अहमदनगर के खिलाफ बीजापुर और गोलकुंडा के शासकों के साथ समझौता किया। 1636 की संधि से यह भी उम्मीद थी कि बीजापुर मराठा सरदार शाहजी को मुगल अधीनता में लाने में मदद करेगा। जल्द ही औरंगजेब की सूबेदारी में उदगीर और औसा के किले मुगलों के आधिपत्य में आ गए। शाहजी ने सुनिश्चित किया कि अहमदनगर के अंतिम शासक मुर्तजा निजाम शाह को औरंगजेब पकड़ सके और उसने खुद बीजापुर में शरण ली, जिससे दक्कन राज्यों के साथ मुगल संघर्ष की अगली लहर को बढ़ावा मिला।

3.2.2 बीजापुर

1490 में बीजापुर को बहमनी साम्राज्य से उसके एक सूबेदार युसूफ आदिल शाह ने अलग किया था और इसलिए इसे आदिल शाही राजवंश के रूप में जाना जाने लगा। आदिल शाह

के पुरखे फारसी थे तथा उसके शासनकाल के दौरान रायचूर, गोवा, गुलबर्गा, कल्याणी और दाभोल आदि राज्य का हिस्सा थे। हालांकि, वह गोवा को पुर्तगालियों से हार गया लेकिन उसके उत्तराधिकारियों, विशेष रूप से इस्माइल शाह, ने अमीर बरीद को हराया और बीदर पर कब्जा कर लिया। इस दौरान विजयनगर साम्राज्य ने रायचूर दोआब कब्जे में ले लिया जिसे इस्माइल शाह द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया गया था और कंधार और कल्याणी के बदले अमीर बरीद को बीदर वापस दे दिया जाना था, जो कभी भी अमल में नहीं आया। दिलचस्प बात यह है कि, उत्तराधिकारियों में से एक व्याभिचारी मल्लू आदिल खान को कैद कर लिया गया था और बाद में उसकी दादी पुंजी खातून के आदेश पर 1535 में अंधा कर दिया गया था।

उसका उत्तराधिकारी इब्राहिम पुर्तगालियों के साथ संघर्ष में आया और उसे साल्सेट और बदरेज के बंदरगाहों पर नियंत्रण छोड़ने के लिए मजबूर किया गया। हालांकि, उसके उत्तराधिकारी अली आदिल शाह (1556–1580) ने विजयनगर साम्राज्य से अढ़ोनी, तोर्गल, धारवाड़ और बाकापुर के किलों पर कब्जा करके क्षेत्र का विस्तार किया। उसकी हत्या पर इब्राहिम आदिल शाह अहमदनगर के शासक की बेटी चांद बीबी के संरक्षण में राजा बना। वह वर्ष 1618 में बीदर के राज्य पर कब्जा करने में सक्षम रहा। मुहम्मद आदिल शाह (1627–1656) के तहत बीजापुर अपने चरम पर पहुँच गया। उसका राज्य अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ था, जिसमें पुर्तगालियों से प्राप्त क्षेत्र तिवी, बरदार और सरजोश शामिल थे। बाद के शासकों को अपने क्षेत्र में मुगलों और मराठा महत्वाकांक्षाओं का सामना करना पड़ा, जो अंततः 1686 में राज्य के मुगल साम्राज्य में विलय के रूप में समाप्त हुआ।

3.2.3 गोलकुंडा

गोलकुंडा बहमनी साम्राज्य से अलग होने वाला अंतिम राज्य था, बल्कि लंबे समय तक गोलकुंडा के शासकों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा नहीं की, हालांकि वे स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे थे। बहमनी सुल्तान शिहाबुद्दीन महमूद (1482–1518) के शासनकाल के दौरान तेलंगाना प्रांत का राज्यपाल सुल्तान कुली लगभग स्वतंत्र था। उसका नियंत्रण पश्चिम और दक्षिण में बीजापुर राज्य और विजयनगर साम्राज्य की सीमाओं तक फैला हुआ था और पूर्व और उत्तर में उसने उड़ीसा के क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था। इसके बाद, गोदावरी को पश्चिम में सीमा के रूप में माना जाने के बावजूद, गोलकुंडा, बीजापुर और बीदर के बीच संघर्ष शुरू हो गया, जब उसने विजयनगर साम्राज्य से कोंडाविदु ले लिया। इन राज्यों के बीच संघर्ष जारी रहा। हालांकि, गोलकुंडा के अगले शासक जमशीद कुली खान ने अहमदनगर और बीजापुर के बीच संघर्ष में एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ की भूमिका निभाई। उसने अली बरीद को बीदर के शासक के रूप में पुनः स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

कुतुब शाही साम्राज्य का अगला उत्तराधिकारी इब्राहिम (1550–80) था, जिसने खुद को स्वतंत्र घोषित करने और अपने नाम पर सिक्के चलाने का श्रेय दिया जाता है। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद कुली कुतुब शाह (1580–1611) ने 1591 में अपनी राजधानी हैदराबाद स्थानांतरित कर दी। उसने यूरोपीय लोगों को गोलकुंडा में अपने कारखाने स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। बाद के शासकों, मुहम्मद कुतुब शाह और अब्दुल्ला कुतुब शाह का ध्यान क्षेत्र के विस्तार के बजाय राज्य के आंतरिक सुदृढ़ीकरण पर ध्यान केंद्रित किया। इसके अलावा, जल्द ही उन्हें मुगल साम्राज्य की बढ़ती साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ा, जो शुरू में 1636 में शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने

के परिणामस्वरूप हुआ, जिसके द्वारा गोलकुंडा ने मुगल को अधिपति स्वीकार कर लिया। इसने उन्हें कर्नाटक की ओर अपने राज्य का विस्तार करने का एक अंतरिम अवसर प्रदान किया। हालांकि, अंततः 1687 में सम्राट औरंगजेब के शासनकाल के दौरान गोलकुंडा मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया।

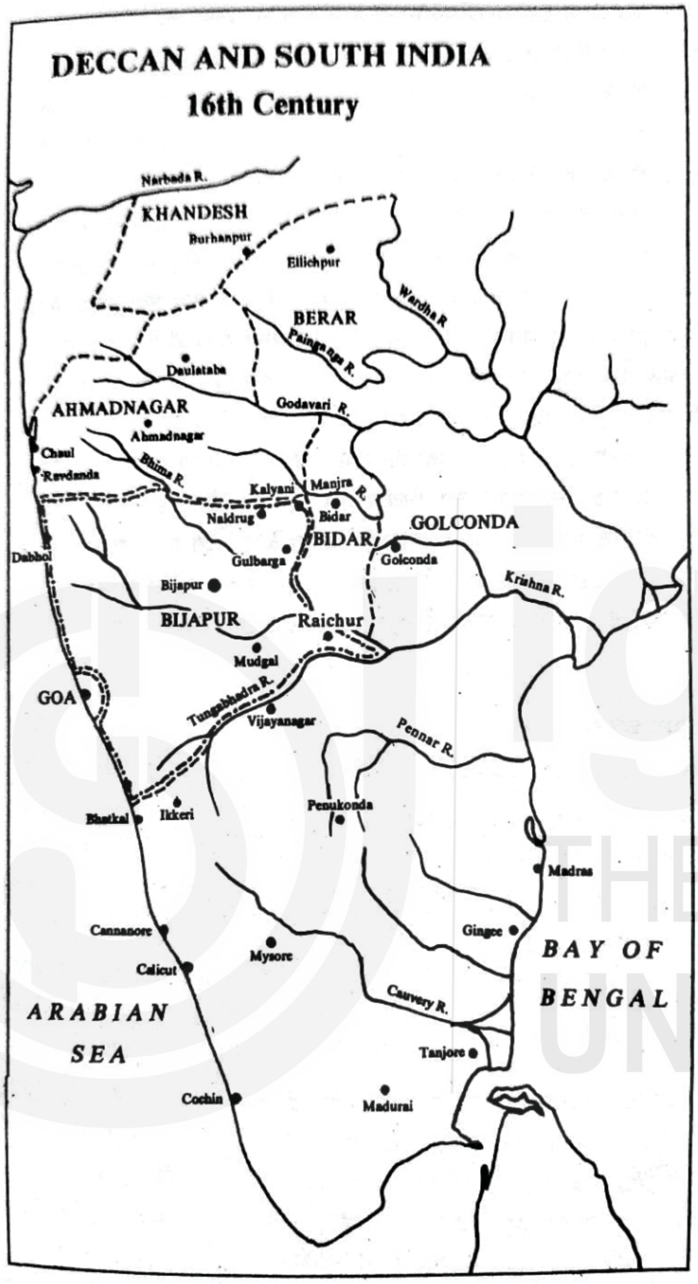

नक्शाः दक्खिन
यह नक्शा हमारे पाठ्यक्रम ई एच आई 04 खंड, इकाई का पुनर्प्रकाशन है

3.2.4 संघर्ष और सहयोग

बहमनी साम्राज्य के पतन और दक्कन में मुगल साम्राज्य के विस्तार के बीच की अवधि परस्पर विरोधी हितों का युग था, जिसके कारण एक तरफ विजयनगर और मराठों और मुगलों की उभरती ताकतों सहित इन विभिन्न क्षेत्रीय राज्यों के बीच तथा दूसरी ओर, यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों, मुख्य रूप से पुर्तगाली के साथ संघर्ष और सहयोग के हालात बने रहे। इसके साथ–साथ कुलीन वर्ग के आंतरिक गुट अक्सर आपस में भिड़ जाते थे जिन्हें कभी–कभी पड़ोसी राज्यों का समर्थन प्राप्त होता था। आश्चर्य नहीं कि इन राज्यों के कुलीन

वर्ग मुख्य रूप से बहमनी सल्तनत से आए थे। इन्हें मुख्यतः दो व्यापक समूहों में विभाजित किया गया था। एक समूह को दखिनी के नाम से जाना जाता था जबकि दूसरे समूह को **अफाकी** या **परदेसी** कहा जाता था। हालाँकि, दखिनी खुद बाहर से आए थे, लेकिन लंबे समय से इस क्षेत्र में बस गए थे और इसमें हिंदू धर्मातंरित भी शामिल थे, जबकि अफाकी हाल ही में इस क्षेत्र में आए थे। एक और व्यापक विभाजन देखा जा सकता है, क्योंकि अधिकांश दखिनी सुन्नी थे, जबकि अफाक ज्यादातर शिया थे। इन व्यापक समूहों के अंदर उपसमूह थे, जिनमें फारसी, तुर्क, अरब, हबशी, मिस्रवासी, भारतीय धर्मान्तरित, आदि शामिल थे। यहाँ तक कि मराठा भी कुलीन वर्ग का हिस्सा थे।

इस तरह के विविध कुलीन वर्ग के भीतर हितों के टकराव को देखना स्वाभाविक था, और निम्नलिखित कुछ उदाहरण स्पष्ट रूप से हितों के टकराव को दर्शाते हैं। बीजापुर में एक नाबालिग इस्माइल अपने पिता सुल्तान युसूफ आदिल खान के निधन के बाद गद्दी पर बैठा। कमाल खान, एक दखिनी कुलीन उसका राज–प्रतिनिधि बन गया और अफाकियों पर मुकदमा चलाना शुरू कर दिया और शिया धर्म के स्थान पर सुन्नी पंथ को राज्य धर्म घोषित कर दिया। हालांकि, जब उसने राजगद्दी हथियाने की कोशिश की, तो उसकी हत्या कर दी गई। जल्द ही दखिनियों ने अपना प्रभाव खो दिया और राज्य वापस शियावाद में लौट आया। इसी तरह, अहमदनगर में 1510 में मुक्कमल खान, जो पहले से ही वकील और पेशवा था, के राज–प्रतिनिधि के काल के तहत नाबालिग बुरहान शाह के राज गद्दी पर बैठने के समय दखिनी और अफाकी गुटों के बीच संघर्ष देखा गया। वह एक दखिनी था और अफाकियों ने उसका विरोध किया, जिन्होंने शासक को राज गद्दी से उतारने की कोशिश की, लेकिन सफल न हो सके। हालांकि, बुरहान के शिया धर्म में परिवर्तित होने के बाद शिया धर्म को, एक अफाकी धर्मशास्त्री, शाह ताहिर के प्रभाव में, राज्य धर्म घोषित कर दिया। शाह ताहिर हाल ही में फारस से आया था। कुछ समय बाद उसका पुत्र इस्माइल अफाकियों की मदद से शासक बना, लेकिन जमाल खान के नेतृत्व में दखिनियों ने विद्रोह कर दिया और शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उन्होंने महादविया धर्म को भी राजकीय धर्म घोषित किया। दखिनी और अफाकियों के बीच संघर्ष के कई उदाहरण हैं, जिसके परिणामस्वरूप राज्य कमजोर होते गये।

अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर और बरार के बीच संघर्ष, बदलते गठबंधनों और निष्ठाओं से प्रभावित होता रहा। उदाहरण के लिए, अहमदनगर और बीजापुर में 1530 में बरार और तेलंगाना को क्रमशः अपने में मिलाने के लिए गठबंधन किया। गठबंधनों का नाजुक और प्रासंगिक चरित्र 1543 और 1565 के बीच सबसे अधिक दिखाई दिया। विजयनगर, बरार, बीदर, अहमदनगर और गोलकुंडा के शासकों ने बीजापुर के खिलाफ एक गठबंधन बनाया जो जल्द ही टूट गया और नए गठबंधन के तहत, गोलकुंडा, विजयनगर और बीजापुर अहमदनगर के खिलाफ एक साथ आ गए। अंततः वर्ष 1565 में, अहमदनगर, गोलकुंडा, बीजापुर और बीदर ने विजयनगर के खिलाफ एक गठबंधन बनाया, जिसके परिणामस्वरूप बन्नीहट्टी या तालीकोटा की लड़ाई हुई और विजयनगर साम्राज्य कमजोर हो गया।

अंतरिम में, हम शुरू में बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर राज्यों के तहत महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में मराठों के उदय को देखते हैं। मराठा मुख्य रूप से कृषि से जुड़े समुदाय थे, जिन्होंने एक लड़ाकू वर्ग भी बनाया, हालांकि वे क्षत्रिय नहीं थे। उन्हें इन राज्यों के शासकों द्वारा विभिन्न पदों और गतिविधियों में नियोजित किया गया था, विशेष रूप से बारगीर, जो अक्सर संबंधित शासकों की आधिपत्य के तहत पहाड़ी किलों को नियंत्रित करते

थे, उन्हें अक्सर राजा, नायक और राव जैसी उपाधियों से नवाजा जाता था। कुछ महत्वपूर्ण मराठा सरदारों में चंदर राव मोरे, उसका पुत्र यशवंत राव, राव निंबालकर या फुल्टन राव, जुझार राव, आदि थे। इसके बाद, हम मराठों के नेताओं के रूप में शाहजी और शिवाजी के उदय को देखते हैं, जो मुगलों और दक्कन के विभिन्न राजवंशों के बीच अपनी वफादारी बदलते रहे।

एक और महत्वपूर्ण विकास जो हमें इस काल में देखने को मिलता है, वह है पुर्तगाली शक्ति का उदय और इन राज्यों के साथ संघर्ष और सहयोग। अहमदनगर पुर्तगालियों से युद्ध करने वाला पहला राज्य था। पुर्तगालियों के साथ पहली लड़ाई में उन्हें मिस्र और गुजरात के नौ सैनिक बलों से सहायता मिली और 1508 में वे युद्ध जीत गए। लेकिन 1509 में पुर्तगालियों ने संयुक्त बलों को पराजित कर दिया और निम्नलिखित शर्तों पर एक शांति संधि पर हस्ताक्षर किए गए थे:

अहमदनगर के निजाम शाह को 10,000 क्रूजाडोज की वार्षिक मदद के साथ 30,000 क्रूजाडोज की युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करना था। उनके उत्तराधिकारी के शासनकाल में राजनीतिक विन्यास शीघ्र ही बदल गया। उसने पुर्तगालियों को खानदेश और गुजरात के शासकों से निपटने के लिए रावेदंडा और चौल में किले बनाने की अनुमति दी। विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों और पुर्तगालियों के बीच संघर्ष इस अवधि के दौरान एक अनकहा नियम बना रहा।

पुर्तगालियों के खतरे का मुकाबला करने के लिए बीजापुर ने डचों के साथ गठबंधन किया और उन्हें व्यापार रियायत देने के अलावा वेंगुर्ला में कारखाना बनाने की अनुमति दी। प्रारंभ में डच और बीजापुर की संयुक्त सेनाएँ तिवी, बर्देस, सरजोश और कल्टुली को हथियाने में सक्षम रहीं, लेकिन लंबे समय तक नियंत्रण बनाए नहीं रख सकीं। अंत में, अंग्रेजी और फ्रेंच को भी अपने कारखाने स्थापित करने की अनुमति दे दी गई।

3.2.5 मुगलों का आगमन

गुजरात की विजय के साथ अकबर दक्कन में भी अपने क्षेत्र का विस्तार करने को इच्छुक था। तथ्य यह है कि गुजरात की सल्तनत का न केवल दक्कन राज्यों पर अधिकार का दावा था, बल्कि उन पर आधिपत्य का आनंद भी लिया गया था और इसने अकबर को इसी तरह के दावे करने के लिए प्रोत्साहित किया होगा। इसके अलावा, दक्कन राज्यों के बीच संघर्ष एक आवर्ती विशेषता थी और वे प्रायः गुजरात के शासकों और बाद में मुगलों से मदद मांगा करते थे। साथ ही, मुगल गुजरात के विभिन्न बंदरगाहों और आसपास के क्षेत्रों में व्यापार मार्गों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए भी उत्सुक थे।

1591 में अकबर ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए दक्कन के चार शासकों को राजनीतिक मिशन भेजा तथा इसके बाद, दक्कन राज्यों, विशेष रूप से अहमदनगर के आंतरिक मामलों में सक्रिय हस्तक्षेप किया। अहमदनगर में उत्तराधिकार के मुद्दे को लेकर उथल–पुथल होने के कारण चांद बीबी और मुगलों के बीच संघर्ष हुआ, जिसके फलस्वरूप एक संधि हुई, जिसके तहत बरार को मुगलों को सौंप दिया गया और बहादुर को एक नए निजामशाही शासक और मुगलों के एक जागीरदार के रूप में मान्यता दी गई।

हालांकि, यह संधि भी इस क्षेत्र में स्थिरता स्थापित नहीं कर सकी और जल्द ही खानदेश के बहादुर शाह और मुगलों के बीच एक संघर्ष शुरू हुआ। 1601 तक असीरगढ़ मुगलों के नियंत्रण में आ गया और खानदेश मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया। फिर भी इस क्षेत्र

में क्लेश बना रहा, क्योंकि जैसे ही अकबर दिल्ली की ओर बढ़ा, मलिक अंबर ने प्रतिरोध का नेतृत्व करते हुए बुरहान निजाम शाह–1 को अहमदनगर के शासक के रूप में स्थापित किया तथा खिरकी को नई राजधानी घोषित कर दिया। कांगड़ा और उत्तर भारत की राजनीति में मुगलों की व्यवस्तता ने दक्कन के शासकों को और समय प्रदान किया। साथ ही, एक ओर दक्कन के शासकों के पक्ष में मुगल सेनापति का पलायन तथा शाहजहाँ द्वारा विद्रोह और दूसरी ओर दक्कन राज्यों के शासकों के बीच आपसी संघर्ष के परिणामस्वरूप एक अस्थिर स्थिति पैदा हो गई। कभी मुगलों का आधिपत्य होता था और कभी स्थिति मलिक अंबर के पक्ष में होती थी। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक शाहजहाँ ने दक्कन के प्रति आक्रामक नीति को आगे बढ़ाने का फैसला नहीं ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप, 1636 की संधि हुई। आगे की घटनाओं की चर्चा बाद के खण्डों में मराठों के साथ की जाएगी, जो इस क्षेत्र में प्रमुख खिलाड़ी के रूप में उभरे।

3.2.6 प्रशासनिक संरचना

सुल्तान या शासक क्षेत्र में सर्वोच्च थे और उन्हें मंत्रिपरिषद द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। सदस्यों की संख्या और मंत्रिपरिषद की संरचना पर शासक का पूर्ण विवेकाधिकार था। आमतौर पर कुलीन वर्ग प्रशासन के उच्च स्तर में शामिल होता था और शासकों से बेहतर शासन के लिए कुलीन वर्ग के विभिन्न गुटों के बीच कार्य व शक्ति संतुलन बनाए रखने की अपेक्षा की जाती थी। हमेशा की तरह प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए एक मंत्री के अधीन विभिन्न विभाग बनाए गए और कार्य दिये गए। विभिन्न विभागों की संख्या और कार्य एक राज्य से दूसरे राज्य और एक शासक से दूसरे शासक के काल में भिन्न होते थे। सामान्य तौर पर वकील–उल–सल्तनत और कभी–कभी पेशवा का प्रयोग इस क्षेत्र में सर्वोच्च मंत्री पद के लिए करते थे। पेशवा और वकील–उल–सल्तनत परस्पर विनिमय योग्य थे और आमतौर पर वह शासक के बाद दूसरा सर्वोच्च पद होता था। मीर जुमला या जुमुलतुल मुल्क अगला महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद था, लेकिन कई बार यह वकील–उल–सल्तनत के कार्यालय में निहित था। मीर जुमला कुल मिलाकर राज्य के वित्तीय और राजस्व मामलों के लिए जिम्मेदार था।

जहाँ तक प्रांतीय प्रशासन का प्रश्न है, बहमनी संरचना जारी रही जहाँ प्रांतों को तरफ और उनके राज्यपालों को तरफदार कहा जाता था। प्रांतों की संख्या राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार तथा क्षेत्रीय नियंत्रण में निरंतर संशोधन के कारण बदलती रही। पूरे क्षेत्र को आमतौर पर तीन समूहों में विभाजित किया गया था–

1) राजकीय भूमि, जो उन अधिकारियों द्वारा शासित किए जाते थे, जो मीर जुमला को सीधे संपर्क करते थे।

2) जागीर भूमि, जो जागीरदारों को सौंपा जाता था और इन जागीरदारों से यह उम्मीद की जाती थी कि वे कानून और व्यवस्था को बनाए रखेंगे और साथ ही साथ, सेना, भू–राजस्व संग्रह का प्रबंधन, आदि में भी सहयोग देंगे।

3) वे प्रमुख जिन्होंने शासक की अधिपति स्वीकार कर ली थी, वह एक निर्धारित पेशकश भेजा करते थे, ताकि वे अपने क्षेत्र पर अपना शासन कर सकें। इन प्रमुखों से युद्धों के दौरान सैनिकों की आपूर्ति की भी उम्मीद की जाती थी। राजकीय भूमि और जागीर भूमि ज्यादातर समय सरकार नामक इकाई में विभाजित थी जो परगना का एक समूह था, जबकि गाँव सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी। ग्राम स्तर पर, हमें पटेल का संदर्भ, एक

मुखिया के रूप में मिलता है, जो न्यायिक और राजस्व मामलों का प्रबंधन करते थे। कुलकर्णी लेखापाल थे और दोनों को रखरखाव के लिए इनाम भूमि मिलती थी। गाँव के चौकीदारों को महार कहा जाता था। कारीगरों की कई श्रेणियां थीं, जिन्हें मोटे तौर पर बलुतेदार या बाराबलुत कहा जाता था। बलुता को फसल के समय अनाज के हिस्से के रूप में भी जाना जाता है, जो उन्हें रखरखाव के लिए भुगतान किया जाता था।

बोध प्रश्न 1

1) बहमनी सल्तनत के पतन के बाद उभरी दक्कन की क्षेत्रीय राजनीति पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

2) बीजापुर और अहमदनगर में कुलीन वर्ग के विभिन्न गुटों के बीच संघर्ष की प्रकृति की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

3.3 मराठो का उदय

17वीं शताब्दी में एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में मराठों के उदय की व्याख्या करने के कई तरीके हैं और विद्वानों ने कुछ संभावित स्पष्टीकरण प्रस्तावित किए हैं। ग्रांट डफ ने अपनी पुस्तक *ए हिस्ट्री ऑफ द मराठा* (1826) में मराठों को सहयाद्री के जंगलों में एक विस्फोट के रूप में माना। हालांकि, एम. जी. रानाडे (*राइज ऑफ मराठा पावर*, 1900) ने सुझाव दिया कि यह मुगलों के खिलाफ, जो विदेशी थे, राष्ट्र के लिए संघर्ष था। इस तरह के प्रस्ताव को ऐतिहासिक आधार पर बनाए रखना मुश्किल है, खासकर क्योंकि अगर मुगलों को बाहरी माना जाता था, तो मराठों को बीजापुर और अहमदनगर के दरबार में सेवा स्वीकार करने की व्याख्या कैसे की जाए।

इसी तरह का तर्क जदुनाथ सरकार और जी. एस. सरदेसाई द्वारा दिया गया था, जिन्होंने औरंगजेब की सांप्रदायिक नीतियों के खिलाफ 'हिंदू' प्रतिशोध को मराठा शक्ति के उदय का कारण बताया था। हालांकि इस तरह के दावे का कायम रखना कठिन है, खासकर जब मराठों ने नियमित रूप से बीजापुर और अहमदनगर के मुस्लिम शासकों की सेवा की। इसके अलावा, शिवाजी की नीतियां इस तरह के दावे की पुष्टि नहीं करती हैं। उसके द्वारा हैन्दव धर्मोद्वारक जैसी उपाधि को अपनाना नियमित रूप से शासकों द्वारा ग्रहण किया जाता था। आंद्रे विंक के अनुसार मुगलों के बढ़ते दबाव की वजह से मराठों का उदय हुआ। सतीश चंद्र ने मुगलों को कई कारकों में से एक माना है, जिसे उन्होंने विस्तार से समझाया है।

सतीश चंद्र बड़े सामाजिक–आर्थिक संदर्भ में मराठों के उदय की जांच करते हैं। वह भूगोल की महत्वपूर्ण भूमिका को भी स्वीकार करते है, जिसने एक अलग राजनीतिक व्यवस्था प्रदान की। उन्होंने यह सुझाव दिया कि शिवाजी ने बिचौलियों के खिलाफ असंतोष का फायदा उठाया और किसानों से समर्थन हासिल करने में सफल रहे। शिवाजी ने सत्ता के दुरूपयोग को रोकने के लिए देशमुखों की शक्तियों को कम कर दिया। देशमुखों द्वारा रखे जाने वाले परिचारकों की संख्या भी प्रतिबंधित की, जिसने देशमुखों की शक्तियों को सीमित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे छोटे जमींदारों को लाभ हुआ, जिन्होंने शिवाजी के अधीन मराठा सेना में सशस्त्र अनुचरों की बड़ी संख्या का गठन किया। शिवाजी ने खेती के तहत क्षेत्र के विस्तार और खेती के सुधार पर जोर दिया, जिससे किसानों को लाभ हुआ। इरफान हबीब ने सुझाव दिया है कि उत्पीड़ित किसान विद्रोह के लिए उत्सुक थे और शिवाजी इस ऊर्जा का उपयोग करने में सफल रहे।

किसी भी अन्य उभरती हुई शक्ति की तरह शिवाजी ने वैवाहिक संबंधों का बेहतरीन उपयोग किया। देशमुखों की शक्तियों को कम करते हुए, शिवाजी ने इलाके के प्रमुख देशमुख परिवारों जैसे निंबालकर, मोरया, शिर्के, आदि के साथ वैवाहिक संबंध बनाया और समान हैसियत का दावा किया। इसके अलावा, गंगाभट और बनारस के अन्य ब्राह्मणों की मदद से सूर्यवंशी क्षत्रीय के रूप में शिवाजी के राज्याभिषेक ने उसकी प्रतिष्ठा को और बढ़ाया। उन्होंने वंशावली की मदद से शिवाजी को इंद्र और क्षत्रिय वर्ण के दावे का समर्थन किया। इससे उसे मराठा परिवारों के बीच उच्च स्थान का दावा करने में मदद मिली तथा इस तरह सरदेशमुखी लेने के हक का विशेष दावा भी करने में लाभ प्राप्त हुआ।

क्षत्रिय का दर्जा प्राप्त करने की इस संभावना ने मराठाओं को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो न केवल कृषक थे बल्कि यौद्धा भी थे। इस प्रकार मराठों ने शिवाजी का समर्थन किया और शिवाजी की सैन्य सफलता में एक अनुकरणीय भूमिका निभाई। इसी प्रकार, कृषि समुदाय, कुनबी, साथ ही साथ आदिवासी समूह जैसे कोली और अन्य लोग शिवाजी के समर्थन में उतर आए। इसलिए शिवाजी का उत्थान मराठा समाज के विभिन्न वर्गों की अधिक से अधिक लामबंदी पर आधारित था। वे बेहतर सामाजिक स्थिति की भी मांग कर रहे थे और क्षेत्र के पारंपरिक अभिजात वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण के खिलाफ अपनी नाराजगी दिखाने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए, मराठा विद्रोह को केवल विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने की इच्छा के रूप में देखना बहुत ही अपर्याप्त व्याख्या है।

सामाजिक और राजनीतिक लामबंदी में भक्ति आंदोलन की भूमिका और महत्व मराठा शक्ति के उदय में सबसे अधिक दिखाई दिया। महाराष्ट्र धर्म द्वारा समतावाद पर जोर देने ने मराठों को एक सांस्कृतिक पहचान के रूप में मजबूत करने और सामाजिक उत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैसे ही महाराष्ट्र धर्म का अर्थ प्रबुद्ध राज्य की नैतिक नीति है, जिसे गुरू रामदास ने राजनीतिक अर्थ दिया। गुरू रामदास तुर्क अफगान–मुगल शासन के आलोचक थे। संत कवि के इस रूख को शिवाजी ने अपनाया और उसने दक्कनी शासकों के साथ–साथ मुगलों के खिलाफ भी किसानों को संगठित किया। हालांकि, यह प्रमुख शक्तियों के खिलाफ एक क्षेत्रीय दृष्टिकोण था। इसलिए इसे मुसलमानों के खिलाफ हिन्दूओं की लड़ाई नहीं कहा जा सकता। यह एक तथ्य है कि शिवाजी, उसके रईसों/सरदारों और उसके उत्तराधिकारियों ने अपने प्रभुत्व में चौथ और सरदेशमुखी (एक वैध लूट) एकत्र की। यह स्पष्ट प्रमाण है कि यह मुसलमानों के खिलाफ लड़ने वाला हिंदू राष्ट्र नहीं था। इसी तरह हिंदू स्वराज्य का प्रश्न मुगलों के केंद्रीकरण के प्रयासों के खिलाफ

क्षेत्रीय शक्ति द्वारा राजनीतिक लामबंदी का एक उपकरण था। मराठा विशेष रूप से अहमदनगर के विघटन के बाद एक बड़ी रियासत स्थापित करना चाहते थे।

3.4 मराठा शक्ति का सुदृढ़ीकरण

जैसा कि पहले चर्चा की गई थी कि 17वीं शताब्दी के बाद से दक्कन राज्यों के तहत शक्तिशाली राजनीतिक समूह के रूप में मराठाओं का उदय शुरू हुआ और भोंसले परिवार ने मराठा राज्य के गठन के मार्ग का नेतृत्व किया।

3.4.1 शाहजी

शिवाजी के दादा मालोजी भोंसले फुलटुन के देशमुख जगपाल राव नायक निंबालकर से संबंधित थे। मालोजी 1577 में अहमदनगर के शासक मुर्तजा निजाम की सेवा में बारगीर के तौर पर शामिल हुए। जीजाबाई के साथ विवाह को लेकर कुछ प्रारंभिक गलतफहमी के बावजूद, उन्हें मालोजी राजा भोंसले की उपाधि के साथ शिवनेरी और चाकुन के किलों का प्रभारी बनाया गया था। उन्हें 17वीं शताब्दी के प्रारंभ में पूना और सोपा की जागीरें भी मिलीं। उनकी प्रतिष्ठा तब और बढ़ गई जब एक बहुत शक्तिशाली देशमुख जादव राव सिंदेकर ने अपनी बेटी जीजाबाई का विवाह मालोजी के पुत्र शाहजी से कर दिया। इसी दौरान, मुगलों ने अकबर के शासनकाल में अहमदनगर पर कब्जा कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप इलाके में बहुत अराजकता और भ्रम पैदा हुआ। इसी बीच में शाहजी अपने पिता मालोजी का उत्तराधिकारी बना और 1630 में 6000 जात और 5000 सवार के पद के साथ मनसबदार के तौर पर मुगल सेवाओं में शामिल हो गया। हालांकि, 1632 में जल्द ही पक्ष बदल लिया और बीजापुर के शासक के दरबार में चला गया और तेजी से निजामशाही क्षेत्र के लगभग 1/4 पर कब्जा कर लिया। जल्द ही मुगल एक बार फिर इस क्षेत्र में सक्रिय हो गए और शाहजी को अधिकांश क्षेत्र वापस सौंपने के लिए मजबूर कर दिया गया और बीजापुर सरदार के रूप में उसे कोंकण क्षेत्र में वापस लौटना पड़ा। यहाँ वह मुरारजी पंत के संपर्क आया और रंदौलाह खान की सेवाओं में शामिल हो गया और कर्नाटक अभियान के दौरान अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन किया।

(बाद की अवधि का विवरण अगले भाग में शिवाजी के सत्ता में आने के साथ करेंगे)।

3.4.2 शिवाजी

शिवाजी, मराठा शक्ति के प्रमुख निर्माता का जन्म शिवनेरी में वर्ष 1627 में हुआ था और 1636 तक अपनी माँ जीजाबाई के साथ रहे, जब शाहजी को अपने कब्जे के सात किलों को मुगलों को देने के लिए मजबूर होना पड़ा, तब वह दादाजी कोंडदेव के संरक्षण में पूना में रहे। 1647 में दादाजी कोंडदेव की मृत्यु के बाद शिवाजी ने शाहजी के प्रतिनिधि के रूप में पूना पर अधिकार कर लिया। इसी समय शिवाजी ने पूना के पश्चिम में स्थित मावल प्रमुखों जेधे नायक और बंदाल नायक, के साथ मित्रता विकसित की। शिवाजी के लिए यह मित्रता बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि मावल शिवाजी की सेना की रीढ़ थे। शिवाजी हमेशा मानते थे कि उस क्षेत्र में उनका दावा उचित था, जिसे उनके पिता को 1636 में देना पड़ गया था और वह उसे फिर से हासिल करना चाहते थे। हालांकि, बीजापुर के सेनापति, मुस्तफा खान द्वारा अपने पिता की गिरफ्तारी ने शिवाजी को अपने पिता को रिहा करने के लिए बीजापुर पर दबाव

बनाने के लिए मुगल की मदद लेने के लिए मजबूर किया। इस बीच, शिवाजी 1648 में प्रांदर के किले पर कब्जा करने में सफल रहे और 1656 तक वह जावली के किले पर कब्जा करने में सफल रहे, जो मावले सरदार चंद्र राव मोरे का गढ़ था। जावली पर कब्जा करने से न केवल दक्षिण और पश्चिम कोंकण क्षेत्र में और विस्तार करने का मौका मिला, बल्कि मोरे क्षेत्र के मावले सरदारों के शामिल होने के कारण उसकी सैन्य ताकत भी बढ़ी।

इस बीच, औरंगजेब, जो दक्कन का सूबेदार था, उत्तर की ओर चला गया और उत्तराधिकार के युद्ध में शामिल हो गया। उत्तराधिकार के युद्ध में व्यस्त मुगलों ने शिवाजी को एक सुनहरा अवसर प्रदान किया और शिवाजी ने बीजापुर के शासक का साथ देते हुए दक्कन के उन क्षेत्रों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया, जो मुगलों के कब्जे में थे। आगे विस्तार करते हुए उसने 1658 तक जंजीरा, सिद्दियों से कल्याण, भिवंडी और माहुली पर कब्जा कर लिया। जल्द ही शिवाजी और बीजापुर के बीच संबंधों में खटास आ गई और आदिल शाही शासकों ने शिवाजी को दंडित करने के लिए अब्दुला भटाटी अफजल खान को नियुक्त किया। कूटनीति पर अधिक भरोसा करते हुए अफजल खान ने शिवाजी के साथ एक बैठक की जहाँ शिवाजी ने उसकी हत्या कर दी (10 नवंबर, 1659)। इसने शिवाजी को और प्रोत्साहित किया और उसने पन्हाला और दक्षिण कोंकण पर अधिकार कर लिया, हालांकि मराठा पन्हाला को अधिक समय तक अपने कब्जे में नहीं रख सके। शिवाजी की बढ़ती शक्ति ने औरंगजेब को दक्कन में शाइस्ता खान को नियुक्त करने के लिए मजबूर किया। प्रारंभ में शाइस्ता खान ने सफलता हासिल की और मुगल उत्तरी कोंकण पर कब्जा करने में सफल रहे, लेकिन रत्नागिरी पर कब्जा नहीं कर पाए। शिवाजी ने शाइस्ता खान के शिविर पर हमला करके और उसे गंभीर रूप से घायल करके मुगलों पर जोरदार प्रहार किया। जल्द ही इसके बाद एक महत्वपूर्ण मुगल शहर सूरत (1664) पर शिवाजी का हमला हुआ।

स्थिति की गंभीरता को समझते हुए औरंगजेब ने मिर्जा राजा जय सिंह को दक्कन का सूबेदार नियुक्त किया। रणनीतिक रूप से आगे बढ़ते हुए जय सिंह ने बीजापुर के खिलाफ शिवाजी पर मुगलों का साथ देने का दबाव बनाने की कोशिश की। उसने दोनों के बीच दरार पैदा की और साथ ही शिवाजी की जागीरों को मुगल क्षेत्र से दूर बीजापुर के कम उपजाऊ क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित करने का प्रयास किया। 1665 में जय सिंह ने शिवाजी को पुरंदर में हरा दिया। संधि के शर्तों के अनुसार शिवाजी को अपने नियंत्रण के 35 किलों में से 23 को मुगलों को सौंपने के लिए मजबूर किया गया था, जिससे सालाना लगभग 4 से 5 लाख हूण मिलते थे। मुआवजे के तौर पर उसे बीजापुरी तालकोंकण और बालाघाट आवंटित किया जाना था। साथ ही शिवाजी के बेटे को 5000 जात के पद के साथ मुगल सेवाओं में मनसबदार के रूप में नामांकित किया गया था। हालांकि, औरंगजेब की बीजापुर के खिलाफ शिवाजी का समर्थन करने की अनिच्छा और दक्कन में मुगल पक्ष में शिवाजी के खिलाफ बढ़ती नाराजगी ने जय सिंह की रणनीति को बहुत कम सफलता प्रदान की। इसके अलावा, इसके परिणामस्वरूप गोलकुंडा और बीजापुर के बीच गठबंधन हुआ।

एक विकल्प के रूप में जय सिंह ने शिवाजी को आगरा में व्यक्तिगत रूप से औरंगजेब से मिलने के लिए राजी किया। मुगल दरबार में शिवाजी ने अपमानित महसूस किया क्योंकि उसे 5000 जात के मनसबदारों के साथ खड़ा किया गया और उसे उम्मीद के मुताबिक सम्मान नहीं मिला। शिवाजी के विरोध के कारण उसे आगरा में कैद कर लिया गयां इसके बाद,

शिवाजी के भागने और जय सिंह के काबुल में स्थानांतरण ने मुगलों के लिए दक्कन के राजनीतिक परिदृश्य को और जटिल कर दिया।

मुगलों से प्रतिरोध की उम्मीद करते हुए, शिवाजी ने रणनीतिक रूप से दक्कन के सूबेदार राजकुमार मुअज्जम के प्रति मित्रता बढ़ाई। राजकुमार मुअज्जम ने शिवाजी के पुत्र संभाजी को 5000 जात का मनसब दिया और बरार क्षेत्र में एक जागीर आवंटित की। राजकुमार मुअज्जम द्वारा विद्रोह के डर से, औरंगजेब ने 1 लाख हूण वसूल करने के बहाने बरार क्षेत्र में शिवाजी की जागीर के खिलाफ कार्रवाई शुरू की, जो शिवाजी को आगरा में मुगल दरबार की यात्रा के लिए अग्रिम के रूप में दी गई थी। इसके अलावा, दक्कन में मुगल खेमे के भीतर आंतरिक गुटों की बढ़ती कलह के दौरान जसवंत सिंह, जो राजकुमार का करीबी था, को बुरहानपुर में स्थानांतरित कर दिया गया, जिससे दक्कन में मुगलों की स्थिति और कमजोर हो गई। शिवाजी ने स्थिति का लाभ उठाया और 1666 में पुरंदर की संधि के अनुसार, मुगलों को जो किले सौंपे गए थे, वे पुनः प्राप्त करने की कोशिश शिवाजी द्वारा की जाने लगी। उसने वर्ष 1670 में एक बार फिर सूरत पर हमला किया।

मराठा सफलता के कारण 1670 में पहले महाबत खान को नियुक्त किया गया और फिर जल्द ही 1673 में उसे हटा कर बहादुर शाह को नियुक्त कर दिया गया। हालांकि, उनमें में कोई भी मराठा क्षेत्र के विस्तार और क्षेत्र में मराठा शक्ति के बढ़ते प्रभाव पर रोक नहीं लगा सका। इसी बीच, शिवाजी ने 1672 में अली आदिल शाह की मृत्यु के बाद बीजापुर क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बढ़ाया। जिस दौरान औरंगजेब अफगान विद्रोह से निपटने में व्यस्त था, शिवाजी ने 1674 में खुद का राज्याभिषेक करवाया और अपनी मृत्यु तक, जो 1680 में हुई थी, अपनी स्थिति मजबूत करते रहा। यह वही वर्ष है जब औरंगजेब ने पूर्ण विजय के उद्देश्य से व्यक्तिगत रूप से दक्कन जाने का फैसला किया।

3.5 मुगल–मराठा संबंध

मुगल–मराठा संबंधों की चार चरणों में जांच की गई है; पहला चरण (1615–64) शाहजी और शिवाजी के उदय और 1636 की संधि की शर्तों के पालन करने से संबंधित है। दूसरा चरण 1664–1667 की वह अवधि थी जब मुगलों ने शिवाजी द्वारा उत्पन्न बढ़ते हुए खतरों की रोकने के अपने प्रयास में दक्कन के शासकों के साथ गठबंधन करते हुये आक्रामक नीति अपनायी। तीसरे चरण (1667–1680) में शिवाजी के राज्याभिषेक के साथ मराठा शक्ति और मजबूत हुआ और चौथे चरण, 1680 के बाद मुगल सम्राट औरंगजेब ने लगभग सभी दक्कन राज्यों पर कब्जा करके मराठों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से दक्कन में खुद जा पहुँचा। पहले तीन चरणों की पिछले भाग में जांच की जा चुकी है। आइए हम मराठा प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं की जांच करने से पहले शिवाजी के मृत्यु के बाद मराठा राज्य व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

मराठा दरबार में उत्तराधिकार के मुद्दे पर शिवाजी को अपने अंतिम वर्षों के दौरान एक बहुत ही मुश्किल स्थिति से निपटना पड़ा। बड़े बेटे संभाजी और राजाराम, जो उस समय नाबालिग था, के बीच क्षेत्र के विभाजन के मुद्दे पर दरार पैदा हो गई। दक्कन में मुगल सरदार दलेर खान ने इस दरार का फायदा उठाया और संभाजी को 1678 में मुगल सम्राट द्वारा 7000 जात का मनसब की पेशकश की। राजाराम और संभाजी के बीच यह दरार और भी चौड़ी हो गई

और मराठा शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस बीच औरंगजेब ने विद्रोही राजकुमार अकबर को आश्रय देने वाले मराठों को दबाने के लिए भी सभी प्रयास किया। हालांकि, मुगल मराठों के खिलाफ वांछित परिणाम प्राप्त नहीं कर सके, इसलिए औरंगजेब ने बीजापुर और गोलकुंडा पर कब्जा करने का फैसला किया, ताकि वह मराठों पर ध्यान केंद्रित कर सके। इस प्रकार, बीजापुर को 1686 में और गोलकुंडा को 1687 में मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था।

इस बीच, मराठों ने औरंगजेब की व्यस्तता का लाभ उठाते हुए कर्नाटक पर अपना नियंत्रण मजबूत कर लिया, जिस क्षेत्र ने बाद में उनकी रक्षा की दूसरी पंक्ति के रूप में कार्य किया। हालांकि, मराठों ने औरंगाबाद और बुरहानपुर के बीच के क्षेत्र को उजाड़ करके मुगलों को परेशान किया, लेकिन जल्द ही उन्हें मुगल साम्राज्य की ताकत का सामना करना पड़ा। बीजापुर और गोलकुंडा पर मुगलों की विजय के बाद मुगलों की ओर बड़े पैमाने पर मराठों का दलबदल हुआ, जो अंततः संभाजी को कारावास और मार्च, 1689 में उसकी फांसी की ओर ले गया। बीजापुर और गोलकुंडा के विलय ने मुगलों की मदद करने के बजाय स्थिति को और जटिल कर दिया। मुगलों को अब इन क्षेत्रों के मामलों का प्रबंधन करने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसके फलस्वरूप जागीरदारों की नियुक्ति हुई और इसके परिणामस्वरूप विशेष रूप से बिचौलियों जैसे नायक, वलेमा, देशमुख आदि के बीच स्थानीय कृषि तनाव पैदा हुआ।

सतीश चंद्र ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान मराठा मनसबदारों की संख्या 13 से बढ़कर औरंगजेब के तहत मुगल सेवा में दक्कन के मनसबदारों की संख्या 575 तक पहुंच गई। **(मुगल कुलीनों की रचना का विवरण इकाई 12, बी एच आई सी 109 में पढ़ा जा सकता है)**। इसके फलस्परूप न केवल दक्कनी और खानजाद मनसबदारों के बीच संघर्ष हुआ, बल्कि मुगल राजकोष पर अत्यधिक दबाव भी पड़ा। मराठा कई क्षेत्रों के नुकसान के बावजूद राजाराम के नेतृत्व में स्थिति का बेहतर फायदा उठाने में सक्षम थे। मुगल रायगढ़ (1689), पन्हाला (1689) और यहां तक कि सतारा (1700) को भी जीतने में सफल रहे। परन्तु वे राजाराम को नहीं पकड़ सके। मुगल सेना युद्ध से थकी हुई थी और स्थानीय आक्रोश को काबू करना मुश्किल हो रहा था। मराठों को कुचलने की असमर्थता ने मुगल सेना का मनोबल जबरदस्त गिरा दिया। इस मौके पर औरंगजेब को अपनी मुर्खता का अहसास हुआ और वह अहमदाबाद की ओर जाने पर विचार करने लगा, लेकिन 1707 में औरंगाबाद में उसकी मृत्यु हो गई। (1707 के बाद के मराठा इतिहास का संक्षिप्त विवरण **इकाई 18** में दिया गया है)।

3.6 मराठों की प्रशासनिक संरचना

मराठा प्रशासनिक संरचना ने दक्कन राज्यों के दरबारों में प्रचलित पहले की परंपराओं से बहुत कुछ उधार लिया था। पेशवा, मजूमदार, वकिया—नवीस, दबीर, सुरनी, आदि जैसे कार्यालय पहले भी मौजूद थे। अष्टप्रधान की अवधारणा का श्रेय शिवाजी को नहीं दिया जा सकता है, लेकिन यह मराठा प्रशासन का व्यापक ढांचा बन गया था।

3.6.1 केंद्रीय प्रशासन

अष्टप्रधान की संरचना इस प्रकार थी:

1) **पेशवा** या प्रधान मंत्री: वह नागरिक तथा सैन्य, दोनों मामलों का प्रमुख था।

2) **मजूमदार** या लेखा परीक्षकः वह राज्य की आय और व्यय का रिकॉर्ड रखता था।

3) **वाकिन्स/नवीस** या चैमबलेनः वह अधिकारी जो राजा के निजी मामलों को देखता था।

4) **दबीर** या विदेश सचिवः वह अधिकारी जो विदेश मामलों का प्रभारी होता था।

5) **सुरनी** या अधीक्षकः यह सभी अधिकारिक पत्राचार का ध्यान रखने की जिम्मेदारी को निभाने की कोशिश करता था।

6) **पंडित राव** या धार्मिक प्रमुखः राज्य के धार्मिक मामलों को देखने वाला अधिकारी।

7) **सेनापतिः** सेना का मुखिया था।

8) **न्यायधीश** मुख्य न्यायधीशः वह कार्यालय जो राज्य की न्यायिक व्यवस्था की देखभाल करता था।

अष्टप्रधान के प्रत्येक कार्यालय को आठ सहायकों अर्थात् दीवान, मजूमदार, फडनीस, सबनीस, कारखानीस, चिटनिस, जमादार और पोटनिस के द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। अष्टप्रधान को सीधे राज्य के खजाने से भुगतान किया जाता था और उन्हें कभी भी जागीर नहीं दी जाती थी। प्रारंभ में, ये अधिकारी राजा द्वारा नियुक्त किए जाते थे और राजा जब तक चाहे तब ही तक पद पर बने रहते थे। अधिकांश कार्यालय, विशेष रूप से, शिवाजी के शासनकाल के दौरान, न तो स्थायी थे और न ही वंशानुगत। बाद में ये पद वंशानुगत और स्थायी हो गए। मुगल साम्राज्य के मनसबदारों के समान ही, पंडित राव और न्यायधीश को छोड़कर सभी अधिकारियों से सैन्य अभियानों में भाग लेने की उम्मीद की जाती थी। एक अन्य महत्वपूर्ण कार्यालय केंद्रीय प्रशासन चिटनिस था जो प्रांतीय ओर स्थानीय स्तर के अधिकारियों के साथ पत्राचार करता था और वह शाही पत्राचार का प्रभारी था।

3.6.2 प्रांतीय प्रशासन

स्थानीय ग्राम स्तर के अधिकारियों के साथ दरबार में राजा और अधिकारियों को जोड़ने वाली प्रशासन की एक विस्तृत प्रणाली थी। यह क्षेत्र प्रांतों, तरफों और मौजों में बंटा हुआ था। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ये प्रशासनिक प्रभाग पहले से ही अस्तित्व में थे, हालांकि शिवाजी ने उन्हें पुनर्गठित किया था और इन इकाइयों को अलग–अलग नाम दिए। प्रांतों के मामलों की देखभाल सूबेदार, कारकुन द्वारा की जाती थी। एक सूबेदार द्वारा कई प्रांतों को प्रशासित किया जाता था। सूबेदारों को कई सहायकों द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी और वे सहायक थे – दीवान, मजूमदार, फडनीस, सबनीस, कारखानीस, चिटनिस, जमादार और पोटनिस। अगले क्रम में तरफ थे और तरफ स्तर पर मामलों का प्रबंधन हवलदार, करकुन या परीपत्यगर द्वारा किया जाता था। प्रशासन की सबसे निचली इकाई मौजा थी। शुरुआत में कोई भी कार्यालय वंशानुगत नहीं था, हालांकि समय बीतने के साथ अधिकांश कार्यालय वंशानुगत हो गए।

3.6.3 सैन्य संगठन

शिवाजी की सफलता का श्रेय बड़े पैमाने पर उसके सैन्य संगठन को दिया जा सकता है। वंशानुगत अधिकारों के असंख्य दावेदारों के बीच राजनीतिक स्थान बनाना कोई आसान काम नहीं था। शायद यही कारण था कि शिवाजी ने लगभग सभी तालुकों में किलों का निर्माण किया। उसे लगभग 250 किलों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है, और इन किलों के माध्यम से वह अपने सैन्य मामलों का प्रबंधन करने में सक्षम ही नहीं था, बल्कि भीतरी इलाकों को

वह नियंत्रित कर सकता था। इसलिए कोई भी किला कभी भी किसी एक अधिकारी के नियंत्रण में नहीं रहता था। हर किले में एक हवलदार, एक सबनी और एक सरनोबत था, जबकि बड़े किलों में दस तत–सरनोबत तक थे। ये अधिकारी पदों में समान थे और इनके कार्य बंटे हुए थे। हवलदार किले की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार थे और किले की चाबियों के संरक्षक थे। सबनीस, जो पत्राचार का प्रभारी था, सेना की नामावली तथा किले के अधिकार क्षेत्र के तहत भूमि के राजस्व का रिकॉर्ड रखता था। किले की चौकी सरनोबत के नियंत्रण में थी। किलों के अधिकारियों पर नियंत्रण रखने के लिए सबनीस द्वारा जारी किए गए प्रत्येक आदेश पर हवलदार एवं कारखानी की मुहर लगना अनिवार्य था। इसके अलावा, किसी विशेष जाति के वर्चस्व को रोकने के लिए यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि हवलदार और सरनोबत को मराठा होना चाहिए, जबकि सबनी एक ब्राह्मण और कारखानी एक प्रभु (कायस्थ) होना चाहिए।

शिवाजी के अधीन मराठा सेना की तीव्रता इसकी विशेषता थी, विशेष रूप से मुगलों के खिलाफ। अतः शिवाजी ने अपनी पैदल सेना को गुरिल्ला/छापामार और पहाड़ी युद्ध में प्रशिक्षित करने के लिए विशेष प्रयास किया। शिवाजी की पैदल सेना की सबसे छोटी इकाई में एक नायक के नेतृत्व में 9 लोग शामिल थे। ऐसी पाँच इकाइयाँ एक हवलदार के अधीन थीं। दो या तीन से अधिक हवलदार जुमलेदार थे। दस जुमलेदार एक हजारी के नीचे और सात हजारी एक सरनोबत के अधीन थे।

शिवाजी के घुड़सवार सेना में बारगीर और सिलेदार शामिल थे। सिलेदार से अपने घोड़े लाने की अपेक्षा की जाती थी, जबकि राज्य द्वारा बारगीरों को घोड़े प्रदान किए जाते थे। पैदल सेना के समान घुड़सवार सेना का निर्माण किया गया था। एक मराठा हवलदार को 25 बारगीरों के ऊपर रखा गया था और एक जुमले में ऐसे पांच हवलदार थे। एक हजारी में दस जुमले शामिल थे और ऐसे पांच हजारी पंच हजारी के तहत रखे गये थे। प्रत्येक 25 घोड़ों पर जलवाहक और नाल जड़ने वाले के लिए प्रावधान था। वेतन का भुगतान नकद में किया जाता था और आमतौर पर राजस्व आवंटन से बचा जाता था। वतनदारों की सामंती सेना भी सेवा के लिए उपलब्ध थी लेकिन शिवाजी ने उन पर कम निर्भरता की बात कही।

शिवाजी को एक मजबूत नौसेना की आवश्यकता का एहसास हुआ और समुद्र से जुड़ी जनजाति, कोली की सहायता से इसे स्थापित करने का प्रयास किया गया। उसका बेड़ा घुरबों (छोटे जंगी जहाज जिसमें तोपें लगी होती थीं) और 2 मस्तूलों और 40–50 चप्पू वाली नावों से सुसज्जित था। शिवाजी की नौ सेनाओं में लगभग 200 जहाज दो बेड़ों में विभाजित थे। वह नौसेना पर पर्याप्त समय और ऊर्जा नहीं लगा सका क्योंकि वह मुख्य भूमि के मामलों में व्यस्त था। हालाँकि, उसकी नौसेना यूरोपीय और अन्य नौसैनिक शक्तियों को परेशान करने में सक्षम थी लेकिन सिद्दियों के खतरे का सामना नहीं कर सकी।

बोध प्रश्न 2

1) 17वीं शताब्दी में मराठा राज्य व्यवस्था के उदय और विकास में योगदान देने वाले कारकों का समलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

2) शिवाजी के शासनकाल के दौरान मराठों के प्रशासनिक ढांचे की विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

3.7 सारांश

इस इकाई में हमने तीन दक्कन राज्यों; बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर के उदय का सर्वेक्षण किया और साथ ही शिवाजी के अधीन मराठा शक्ति के उदय पर चर्चा की। इन राज्यों के बीच संघर्षों और सहयोग के बदलते स्वरूप का इतिहास और कैसे मराठा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक सत्ता बन गए, इसका भी वर्णन किया गया है। प्रारंभ में मुगलों द्वारा आधिपत्य के क्षेत्र का विस्तार करने के प्रयास और बाद में इन क्षेत्रों के विलय पर भी चर्चा की गई है। क्षेत्र पर नियंत्रण और प्रबंधन को स्थापित करने में मुगलों की कठिनाई का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रशासन की संरचना की निरंतरता को उजागर करने के लिए प्रशासन की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। प्रशासनिक संरचना को शिवाजी द्वारा इस तरह से बनाया गया था कि स्थानीय और क्षेत्रीय वंशानुगत बिचौलियों की शक्तियों को नियंत्रित किया जा सके।

3.8 शब्दावली

अष्टप्रधान : मंत्री परिषद

पेशवा : प्रधानमंत्री

मजूमदार : लेखा परीक्षक

वाकिन्स : वह अधिकारी जो राजा के निजी मामलों को देखता था

दबीर : विदेश सचिव

सुरनी : अधीक्षक

पंडित राव : धर्म संबंधी मामलों का प्रमुख

सेनापति : सेना का मुखिया

न्यायधीश : मुख्य न्यायधीश

भाकर : जीवनी संबंधी विवरण (यह एक मराठी शब्द है)

भूमिया : भूमि धारण करने वाली जाति

देशमुख : वे उत्तर भारत के चौधरियों के समक्षक थे

कोंकण : भारतीय उपमहाद्वीप की पश्चिमी तटरेखा

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 3.2.1, 3.2.2 और 3.2.3 देखें।

2) भाग 3.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 3.3 और 3.4 देखें। यह उम्मीद की जाती है कि यह उत्तर मराठा शक्ति के उदय में दक्कन राज्यों के बीच संघर्ष के महत्व का विश्लेषण करेगा। मराठों के प्रति मुगल नीति की अस्थिरता पर भी विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है।

2) उपभाग 3.2.4 देखें।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Chandra, Satish, 1982. *Medieval India: Society, the Jagirdari Crisis and the Village,* Delhi: MacMillan India.

Asher, Catherine B. and Cynthia Talbot, 2006. *India before Europe*, *New Delhi:* Cambridge University Press.

Chandra, Satish, 1999. *Medieval India: From Sultanate to the Mughals*. Har-Anand,.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 राजपूतः संघर्ष और सहयोग[1]

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राजपूत और प्रारंभिक मुगल शासक

4.3 राजपूत और अकबर

- 4.3.1 मुगल राजपूत संबंधः चरित्र को पुनः परिभाषित करना
- 4.3.2 प्रारंभिक चरण
- 4.3.3 मेवाड़ और अकबर

4.4 राजपूत और जहांगीर

- 4.4.1 निरंतरता और कुछ मामूली परिवर्तन
- 4.4.2 मेवाड़ और जहांगीर

4.5 राजपूत और शाहजहाँ

- 4.5.1 मुगल कुलीन वर्ग में राजपूतों की बढ़ती हिस्सेदारी
- 4.5.2 मेवाड़ और शाहजहां

4.6 राजपूत और उत्तराधिकार का युद्ध

4.7 औरंगजेब और राजपूत

4.8 हस्तक्षेप का विरोधः राठौर विद्रोह

4.9 औरंगजेब-काल के पश्चात

4.10 सारांश

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ पायेंगेः

- मुगल राजपूत संबंधों का बदलता स्वरूप,
- मुगल साम्राज्य के विस्तार में राजपूत शासकों द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका,
- मुगल कुलीन वर्ग के चरित्र को फिर से परिभाषित करने में राजपूतों का महत्व,
- किस तरह मेवाड़ ने मुगल आधिपत्य का विरोध किया,
- मारवाड़ के राठौर साम्राज्य ने किस तरह मुगलों के हस्तक्षेप का विरोध किया।

[1]प्रो. एस. इनायत अली जैदी, इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली।

4.1 प्रस्तावना

मुगल साम्राज्य के विस्तार और समेकन में राजपूत एक अभिन्न अंग थे। मुगल शासकों ने, प्रमुख रूप से अकबर ने यह महसूस किया कि साम्राज्य को मजबूत करने के लिए मुगल कुलीन वर्ग में स्थानीय मध्यस्थों और क्षेत्रीय शक्तियों को शामिल करने की आवश्यकता थी। बाबर और राणा सांगा के बीच प्रारंभिक संघर्ष के बाद मुगल राजपूत संबंधों में एक नए चरण की शुरुआत होती है, जो बाद के मुगल शासकों के काल तक जारी रहा, हालांकि टकराव के कुछ मामले भी देखने को मिले। यद्यपि इस इकाई में हम इन रियासतों की आंतरिक राजनीति में मुगल राजपूत गठबंधनों द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को संबोधित नहीं कर रहे हैं, लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इस गठबंधन ने इन रियासतों की आतंरिक राजनीति को बहुत हद तक बदल दिया। अंत में, यह उजागर करना महत्वपूर्ण है कि उत्तराधिकार के युद्ध के दौरान हारने वाले का साथ देने के बावजूद, राजपूत शासकों को आमतौर पर उत्तराधिकारी शासक द्वारा समायोजित कर लिया जाता था।

4.2 राजपूत और प्रारंभिक मुगल शासक

15वीं शताब्दी तक कई राजपूत प्रमुखों ने अपने कबायली राजतंत्रों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण कर लिया था (विवरण के लिए कृपया **बी एच आई सी 107, इकाई 8 15वीं शताब्दी में नए राज्यों का उदय** देखें)। उनमें से एक राणा सांगा हैं, जिन्होंने दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी और ग्वालियर के मान सिंह तोमर और मेवाती प्रमुख हसन खान जैसे कई अन्य लोगों के साथ मिलकर मुगल सम्राट बाबर के विजय अभियान को रोकने का प्रयास किया, लेकिन 1527 में वे खानुआ के युद्ध में बाबर की बेहतर युद्ध तकनीक का सामना नहीं कर सके। नतीजन बाबर मुगल साम्राज्य की नींव रखने में सफल हो सका। हालांकि अपने चार साल के छोटे से शासन काल में बाबर राजपूत सरदारों के साथ एक स्पष्ट रचनात्मक और स्थायी संबंध विकसित नहीं कर सका। उसके बेटे और उत्तराधिकारी हुमायूँ को अपने भाइयों और अफगानों के साथ संघर्ष करना पड़ा, जो उसके अधिकार को चुनौती दे रहे थे। वह उनका विरोध करने में विफल रहा। शेरशाह सूरी ने उसे ईरान भागने के लिए विवश किया जहाँ उसे शरण मिली। 1555 में उसने वापस आकर मुगल सिंहासन पर पुनः कब्जा कर लिया। परन्तु 1556 में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार इतने कम समय में मुगलों और राजपूत प्रमखों के बीच कोई सीधा संघर्ष या सहयोग नहीं हो सका।

4.3 राजपूत और अकबर

मुगल साम्राज्य के क्रमिक विस्तार के साथ–साथ विजित प्रदेशों पर नियंत्रण मजबूत करना आवश्यक हो गया था। अकबर ने मुगल साम्राज्य के लिए एक ठोस आधार सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न प्रकार के राजनीतिक प्रशासनिक उपायों की शुरुआत की। हुमायूँ के अनुभवों को देखते हुए, अकबर साम्राज्य की स्थिरता के लिए क्षेत्रीय शक्तियों पर पकड़ स्थापित करने के लिए उत्सुक था, जो स्थानीय राजकुमारों और मध्यस्थों, विशेष रूप से राजपुताना के शासकों के प्रति मुगलों के पुनर्परिभाषित संबंधों में परिलक्षित होता है।

4.3.1 मुगल राजपूत संबंधः चरित्र को पुनः परिभाषित करना

क्षेत्रीय जमीन से जुड़ें अभिजात वर्ग और केन्द्रीय शक्ति के संबंधों में बहुत उतार चढ़ाव देखे गए। जब तक केंद्र शक्तिशाली रहा, अधीनस्थ क्षेत्रीय शक्तियाँ उनके नियंत्रण में रहीं, लेकिन केन्द्र के दुर्बल होने की स्थिति में क्षेत्रीय शक्तियों ने स्वतंत्रता का संकेत प्रदर्शित किया। इस प्रकार सैन्य शक्ति पर आधारित ऐसे संबंध अस्थायी प्रकृति के थे और किसी किस्म का स्थायी संबंध स्थापित नहीं कर सके। केंद्र और राजपूत राजतंत्रों के संबंधों की अस्थिर प्रकृति अकबर के शासन संभालने तक जारी रही। अकबर स्थानीय शासकों के साथ रचनात्मक और स्थायी संबंधों के लिए आतुर था। जब अकबर के पिता हुमायूँ भगोड़े और संकट की स्थिति में थे, तब अकबर अमरकोट में सिंध के थार रेगिस्तान में एक स्रोढ़ा राजपूत प्रमुख के यहां पैदा हुआ। उसका पालन–पोषण हिंदुस्तानी संस्कृति में हुआ। इस प्रकार उसने संकीर्ण धार्मिक और नस्लीय दृष्टिकोण के बजाय स्वतंत्र व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक विश्व दृष्टिकोण विकसित किया। उसकी विश्वदृष्टि भारतीय, फारसी और मध्य एशियाई सांस्कृतिक दृष्टिकोण का मिश्रण थी। उसने बचपन से ही अपने भगोड़े माता–पिता के उतार–चढ़ाव को देखा था। इस प्रकार स्वयं के अनुभव और ऐतिहासिक यादों ने अकबर को व्यावहारिक, दूरदर्शी और सकारात्मक दृष्टि विकसित करने में मदद की। यह उसके भविष्य के राजनीति और सामाजिक–धार्मिक कार्यों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उसने सुशासन के प्रबंधन के लिए एक कुशल समूह का गठन किया। इस समूह ने उसकी दूरदर्शी नीति पर अमल करने में उसकी मदद की। अकबर ने ऐसी नीति विकसित की जिसका पालन उसके राजनीतिक वंशजों ने किया और वास्तव में लंबे समय तक टिकाऊ और सफल साबित हुई।

उसने विभिन्न नस्लीय और धार्मिक पहचान के मिलेजुले कुलीन वर्ग का गठन किया। उन्हें एक साथ कैसे रखा जाए और कैसे केन्द्रीय कमान के तहत एकीकृत किया जाए, यह अकबर के लिए एक बड़ी चुनौती थी। इसके लिए उसकी तर्कसंगत विश्वदृष्टि तथा पुराने अनुभव 'सामंती वर्गों के मध्य समानता' के सिद्धांत के रूप में विकसित हुआ। अपने व्यक्तिगत विश्वास से ऊपर उठने और दूसरों की मान्यताओं का सम्मान करने के लिए, उसने मुख्यतः राजपूत प्रमुखों को आकर्षित किया। दूसरों शब्दों में, उसने अपने रैयत और रियासत को उनके धर्मों और सांस्कृतिक लोकाचार का पालन करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी। अकबर के कुलीन वर्ग और विशेष रूप से राजपूतों के साथ उसके राजनीतिक संबधों को 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन तक सामाजिक धार्मिक और आर्थिक विकास के प्रकाश में देखा जाना चाहिए।

4.3.2 प्रारंभिक चरण

अकबर ने स्थानीय प्रमुखों और केन्द्रीय सत्ता के बीच राजनीतिक संबंधों में तेज बदलाव की शुरूआत की। अकबर के समय तक एक स्थानीय पराजित प्रमुख द्वारा एक विजयी शक्ति के आधिपत्य को स्वीकार करने के बाद निर्धारित पेशकश की एक राशि देने पड़ती थी और उस पराजित प्रमुख को अपनी सरदारी अपनी पसंद के अनुसार चलाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था। दूसरे शब्दों में, उसे तब तक स्वायत्तता प्रदान की जाती थी जब तक कि वह पेशकश का भुगतान करना जारी रखता था। इस संबंध को मजबूत बनाने के लिए अकबर ने इस प्रावधान के अलावा उनसे सत्ता और धन साझा करने का प्रस्ताव रखा। इसके लिए उन्हें मुगल सेवा में शामिल होना पड़ा और मुगल साम्राज्य के विस्तार में भाग लेना पड़ा। अकबर की यह नीति सुविचारित थी। समकालीन इतिहासकार आरिफ कंधारी बताते हैं कि

दो से तीन सौ राजा थे जिनके पास बहुत मजबूत किले थे। चूँकि प्रत्येक किले को जीतने में एक या आधा साल तो लग ही जाता था, इसलिए हिंदुस्तान के एक सम्राट के लिए राजाओं के सभी किलों को बल से जीतना संभव नहीं था। अकबर ने उनसे सुलह करना बेहतर समझा। यह भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कंधारी का कहना है कि राजपूत 'सम्राट के प्रति ईमानदार और वफादार' होने के लिए दृढ़ थे। उस वक्त मुगलों के सामने दो चुनौतीपूर्ण मजबूत सैन्य शक्तियाँ थी – अफगान और राजपूत। मुगल अफगानों से डरते थे, क्योंकि वे उनके संभावित राजनैतिक प्रतिद्वंद्वी थे और उन्होंने अकबर के पिता हुमायूँ को ईरान को पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया था। इस प्रकार अकबर के समक्ष राजपूत शासकों से बेहतर संबंध स्थापित करना ही एकमात्र विकल्प था। शेख फरीद भाकरी ने अपनी पुस्तक *जखिरात उल खवानीन* में दर्ज किया है कि ईरान के शाह ने सम्राट हुमायूँ को सलाह दी थी कि हुमायूँ अफगानों के बजाय राजपूतों पर भरोसा करे। शाह ने हुमायूँ को राजपूतों के साथ वैवाहिक तथा सामाजिक संबंध स्थापित करके अपनी शक्ति को मजबूत करने की भी सलाह दी। अकबर यह भी जानता था कि मानव संसाधन के बिना उसके साम्राज्य का विस्तार नहीं किया जा सकता है और इसे एकीकृत और टिकाऊ रखने के लिए स्थानीय प्रमुखों के साथ स्थायी हितों का निर्माण करना आवश्यक था। मानव संसाधन या सैन्य शक्ति स्थानीय प्रमुखों द्वारा और विशेष रूप से राजपूत प्रमुखों द्वारा प्रदान की जा सकती थी, जैसा कि *आइन–ए–अकबरी* के पैदल सेना, घुड़सवार सेना व सेना के जानवरों के सर्वेक्षण से स्पष्ट है जिसे स्थानीय प्रमुखों (राजपूत प्रमुखों सहित) द्वारा रखा जाता था। केवल नौ कुलों के राजपूत प्रमुखों के पास उनकी कमान के तहत 2,62,000 घुड़सवार तथा 12,25,000 पैदल सैनिक थे। सैन्य मानव संसाधनों के लिए केंद्रीय शक्ति की चिंता समकालीन लेखक द्वारा राजा भारमल कछवाहा की अधीनता पर व्यक्त एक बयान से भी स्पष्ट होती है। राजा की अधीनता को बड़े जमींदार की अधीनता के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि उसे एक बड़े उलुस (जनजाति) के प्रमुख के रूप में देखा गया। इस तथ्य की पुष्टि अकबर द्वारा मुगल सेना में शामिल किये गए कछवाहा कुलीनों की संख्या से होती है। 1605 में वे विभिन्न कुलों के 31 रापजूतों की कुल संख्या में से 11 थे। अन्य अवरोही संख्या में राठौर–7, भदुरिया, बघेल, तंवर–2, प्रत्येक से चंद्रावत, भाटी, हाडा, धंधेरा, पुंडीर, बुंदिला, सिसोदिया–1 प्रत्येक से था।

हालांकि, इन वशों में से अधिकांश वंश प्रमुख बिना किसी बड़ी लड़ाई के अकबर या मुगल केन्द्र सरकार की सेवा में शामिल हो गए। यह एक विचारणीय प्रश्न है, बिना किसी महत्वपूर्ण संघर्ष के ये प्रमुख अकबर की सेवा में क्यों शामिल हुए? और इसकी व्याख्या की आवश्यकता है। आरिफ कंधारी बताते है कि अकबर ने अनुनय और सुलह का ऐसा राजनैतिक माहौल बनाया, जिसने स्थानीय प्रमुखों में विशेष रूप से राजपूत प्रमुखों में विश्वास पैदा किया। यहाँ विश्वास पैदा करने का अर्थ है, अकबर ने शुरू से ही 'योग्यता और निष्ठा' के आधार पर सभी प्रमुखों को समान अवसर प्रदान किया। जैसे ही भारमल अकबर की सेवा में शामिल हुआ, उसे 5000 सैनिकों का सेनापति (मनसबदार) बनाया गया। मुगल पदानुक्रम में यह अकबरशाही कुलीन वर्ग में सर्वोच्च पद था। भारमल की व्यक्तिगत स्थिति और वेतन आय के अलावा, उसके ताबीनन (अनुयायियों) की एक बड़ी संख्या के लिए रोजगार के सृजन को ध्यान में रखना भी महत्वपूर्ण था। स्पष्ट रूप से अधिकांश सैनिक उसके क्षेत्र के राजपूत थे। आगे 1572–73 में जब अकबर गुजरात अभियान के लिए गया, तब उसकी अनुपस्थिति में आगरा (जो कि उस वक्त मुगल साम्राज्य की राजधानी थी) को पूरी तरह से भारमल की देखरेख में छोड़ दिया गया। उसे वजीर–ए–मुतलक (असीमित शक्ति का मंत्री) बनाया गया

था। अकबर को अपने साम्राज्य के मामलों का प्रबंधन करने के लिए कुशल, समर्पित और मेधावी वफादार अधिकारियों की आवश्यकता थी। इसलिए शुरू से ही उसने उन्हें महत्वपूर्ण कार्यालय सौंपने की नीति पर अमल किया। इसके अलावा, 1580 में जब अकबर ने अपने साम्राज्य को 12 सूबों (प्रांतों) में विभाजित किया, तो चार महत्वपूर्ण सूबों की सूबेदारी (शासन) राजपूत प्रमुखों को सौंपी गई। वे सूबे थेः

मुखिया का नाम	सूबा का नाम
1) राजा जगन्नाथ	अजमेर
2) राजा असकरण	आगरा
3) राजा भगवान दास	लाहौर
4) कुंवर मान सिंह	काबुल

इसके बाद 1586 में, लाहौर सूबे को बीकानेर के राजा राय सिंह राठौर के अधीन कर दिया गया। शस्त्रागर और संचार जैसे अन्य महत्वपूर्ण विभाग 1583 में राजा जगन्नाथ और राजा लूणकरण को सौंपे गए थे। राजा असकरण को मृतक की संपत्ति का प्रभारी बनाया गया था। जगमल को क्रय–विक्रय विभाग का प्रभार मिला।

तीन रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण और मजबूत किलो को राजपूत प्रमुखों के अधीन रखा गया था। वे थे :

1) ग्वालियर का किला राजा जगन्नाथ को;
2) राजा मान सिंह को रणथंभौर का किला; और
3) रोहतास का किला राज सिंह को और बाद में राजा मान सिंह को।

अकबर द्वारा शुरू की गई इस नीति का उसके उत्तराधिकारियों ने पालन करना जारी रखा और मुगल साम्राज्य के पतन तक यह नीति चलती रही। सम्राट जहांगीर ने अपने पिता की नीति का पालन करना जारी रखा और राजपूत कुलीनों को उनकी योग्यता और वफादारी के अनुसार संरक्षण दिया।

4.3.3 मेवाड़ और अकबर

मुगल–राजपूत संबंधों की शुरुआत पानीपत के युद्ध से होती है। बाबर के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित करने के लिए राणा सांगा ने अपने बेटे बाग को दूत के रूप में काबुल भेजा था। जाहिर तौर पर यह कदम सुल्तान इब्राहिम लोदी के खिलाफ था। आगरा और दिल्ली के कब्जे के बाद, बाबर अन्य शक्तिशाली प्रमुखों को अपने अधीन करने के लिए चला गया। मालवा और गुजरात के सुल्तानों के अलावा राणा सांगा उनमें से एक था। दोनों के बीच संघर्ष का तत्कालिक कारण बयाना का प्रमुख निजाम–उल–मुल्क था, जो दोनों में से किसी का भी आधिपत्य स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक था। मुगल सेना ने बयाना पर हमला किया और इस पर कब्जा कर लिया। राणा सांगा, जिसने बयाना के पास अजमेर पर अपना वर्चस्व स्थापित लिया था, उसने मुगल सेना को चुनौती दी और बयाना में उसे हरा दिया दिया, लेकिन जल्द ही बाबर राणा और उसके सहयोगी हसन खान मेवाती को हराने में सफल

रहा। 1527 में खानुआ की लड़ाई में वे दोनों और कई अन्य मारे गए थे। पानीपत और खानुआ की लड़ाई में बाबर की सफलता का प्रमुख कारण बेहतर युद्ध तकनीक थी। बाबर के पास तोपखाना था जिसने इन सफलताओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बाबर (मृत्यु 1530) के पुत्र और उत्तराधिकारी हुमायूँ अपने भाइयों और गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह और शेर शाह सूरी की चुनौतियों में व्यस्त रहा। उसे ज्ञात था कि उसने दिवंगत राणा रतन सिंह की पत्नी रानी कर्मावती से अपने आंतरिक शत्रुओं और बाहरी आक्रमणकारियों; गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह और सुल्तान बाज बहादुर के खिलाफ अपने राखी भाई (हुमायूँ) से मदद पाने की आशा के साथ राखी स्वीकार की थी। लेकिन हुमायूँ, जो पहले से ही अपनी चुनौतियों के दबाव में था, रानी की पुकार का जवाब नहीं दे सका।

1568 में अकबर की सेना रणथंभौर और चित्तौड़ के किलों को जीतने में सफल रही। बूंदी, डूंगरपुर और बासवाडा के प्रमुखों ने भी मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। लेकिन फिर भी अकबर के सामने मेवाड़ क्षेत्र के प्रमुख राणा प्रताप को हराने की बड़ी चुनौती थी। 1572–73 में गुजरात और 1574 में बंगाल के कब्जे के बाद अकबर ने राणा प्रताप की ओर रूख किया। राणा उदय सिंह (1572) की मृत्यु के बाद उसका पुत्र, प्रताप उसका उत्तराधिकारी बना। प्रताप के बड़े भाई सकट सिंह और जगमल अकबर की सेवा में शामिल हो गए थे।

राणा प्रताप मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक थे। इसलिए अकबर ने कठोर रवैया अपनाया और 1576 में कुंवर मान सिंह और कई अन्य शक्तिशाली कुलीनों की कमान के तहत एक बड़े और शक्तिशाली सैन्य दल को भेजा, अंततः हल्दी घाटी में मुगलों और राणा प्रताप की सेना के बीच लड़ाई हुई। युद्ध का विवरण समकालीन फारसी और बाद में समकालीन राजस्थानी स्रोतों में वर्णित है। युद्ध के बाद, राणा पहाड़ी क्षेत्र कोलियारी गोगुन्दा में चला गया। इस क्षेत्र में मुगल प्रशासन स्थापित हो गया था, लेकिन मुगलों और राणा के अनुयायियों के बीच संघर्ष जारी रहा। 1597 में राणा प्रताप की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद, उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राणा अमर सिंह ने मुगल सेना का सामना किया। मुगलों और राणा की सेना के बीच युद्ध 1615 तक जारी रहा, हालांकि मेवाड़ के क्षेत्र को मुगल नियंत्रण में लाया गया था, लेकिन राणा ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार नहीं किया था। मुगलों की सैन्य शक्ति और मेवाड़ के राणाओं के बीच कोई तुलना नहीं थी, लेकिन राणाओं को मेवाड़ साम्राज्य की प्राकृतिक भौगोलिक स्थिति से अवश्य लाभ प्राप्त हुआ। अरावली पर्वतमाला और घाटियों ने राणाओं की सेना को आक्रामक और रक्षात्मक दोनों शक्ति प्रदान की। मुगल सेना को अरावली पर्वतमाला जैसे पहाड़ी इलाकों में लड़ने के लिए अभ्यस्त और प्रशिक्षित नहीं किया गया था, जबकि ये पर्वतमाला और घाटी राणा की सेना के अभिन्न अंग थे।

बोध प्रश्न 1

1) राजपूतों और प्रारंभिक मुगल शासकों के बीच संबंधों पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

2) अकबर के शासनकाल में राजपूताना के राजपूत शासकों के प्रति रुझान में बदलाव आया। समालोचनात्मक जाँच कीजिए।

....

....

....

....

4.4 राजपूत और जहाँगीर

कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि कुछ धार्मिक कट्टरपंथियों के प्रभाव में जहांगीर ने अपने पिता की नीति को त्याग दिया और तुरानी और ईरानी कुलीनों के पक्ष में राजपूत प्रमुखों के साथ भेदभाव करना शुरू कर दिया, लेकिन हाल के गहन शोधों ने इस सिद्धांत को अस्वीकृत कर दिया है।

4.4.1 निरंतरता और कुछ मामूली परिवर्तन

जहाँगीर ने पहले अपने पिता अकबर के खिलाफ विद्रोह किया था। उसे अपने प्रतिद्वंद्वी राजकुमार खुसरों (जहाँगीर का पुत्र) के खिलाफ तुरानी और ईरानी कुलीनों का समर्थन प्राप्त था। जब जहाँगीर सफल हुआ और अकबर की मृत्यु के बाद मुगल सिंहासन पर बैठा, तब उसने राजपूतों सहित उन सभी कुलीनों का पक्ष लेना शुरू कर दिया जो उसके साथ थे और उनके प्रति ठंडा रवैया अपनाया जो उसके खिलाफ थे, । हालांकि अपने राज्यरोहण के बाद, जहांगीर ने माफी की घोषणा की थी, लेकिन उसकी नापसंदगी उसके कार्यों और अभिव्यक्ति में दिखाई पड़ी। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में उन्हें तिरस्कारपूर्वक साम्राज्य के 'पुराने भेड़िये' कहकर संबोधित किया है। राजा मान सिंह और मिर्जा अजीज कोका, जो सबसे शक्तिशाली राजपूत और तुरानी रईस थे, राजकुमार खुसरो को अगला मुगल सम्राट बनाने के पक्ष में थे। उनके हित समान थे। राजकुमार खुसरो मान सिंह का भांजा और मिर्जा अजीज कोका का दामाद था।

जहाँगीर की सेवा में राजा मान सिंह का पद स्थिर रहा। उसे उसके सैन्य पद में कोई और पदोन्नति नहीं दी गई और 1606 में बंगाल के सूबेदार पद से हटाए जाने के बाद उसे कोई पद भी नहीं सौंपा गया। लेकिन दूसरी ओर, मुगल साम्राज्य के भावी सम्राट राजकुमार सलीम या जहाँगीर का पक्ष लेने वाले अन्य राजपूत प्रमुखों को उनके पदों में पदोन्नति देकर उनका पक्ष लिया गया। राम दास कछवाहा और रायसल दरबारी शेखावत को क्रमशः 2000 जात से 5000 और 1000 जात से 5000 पद पर पदोन्नत किया गया था। इसी तरह मऊ—नूरपुर के राजा बसु को भी 700 से 3500 जात के पद पर पदोन्नत किया गया था। बुंदेला प्रमुख बीर सिंह, जिन्होंने जहाँगीर के कहने पर प्रसिद्ध दरबारी इतिहासकार और *अकबरनामा* के लेखक अबुल फजल की हत्या कर दी थी, को मुगल पदानुक्रम में 5000/2000 की उच्च पद के साथ शाही सेवा में सम्मिलित किया गया था। जहाँगीर के राज्यभिषेक के बाद, जब उसके बड़े भाई रामचन्द्र बुंदेल ने विद्रोह कर दिया, तब उसे उसकी वतन जागीर ओरछा से वंचित कर दिया गया और बीर सिंह देव को सौंप दिया गया। तदोपरान्त अपने शासनकाल की अवधि में जहाँगीर ने नए कुलों और क्षेत्रों के राजपूत प्रमुखों की भी भर्ती की। वे अनूप शहर

के अनूप सिंह बड़गुजर, जम्मू के राजा संग्राम और गुलेर के देबी चंद थे जिनके पद क्रमश इस प्रकार से थे – 2000 / 1600, 1500 / 1000 और 1500 / 500। इन नए भर्ती किए गए कुलीनों में सबसे प्रिय बड़गुजर प्रमुख अनूप सिंह था जिसने जहाँगीर को एक उग्र बाघ से बचाया था। मनसब के अलावा, उसे कोल (अलीगढ़) की सरकार में वतन के रूप में परगना अनूप शहर दिया गया था। उसे अनी राय सिंह दलन की उपाधि भी दी गई थी। जहाँगीर की माँ ने उसे अपना पुत्र माना और वह बिना किसी बाधा के शाही महल में प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र था। वह इतना भरोसेमंद हो गया था कि जहाँगीर ने उसे ग्वालियर किले का किलादार बना दिया और विद्रोही राजकुमार खुसरो की गिरफ्तारी के बाद उस किले में उसकी हिरासत में डाल दिया। इसके बाद, शेख अहमद सरहिंदी एक इस्लामी न्यायशास्त्री, जिसे साम्राज्य में नस्लीय और धार्मिक भावनाओं को भड़काने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था, और किले में अनी राय सिंह दलन की हिरासत में रखा गया था।

4.4.2 मेवाड़ और जहाँगीर

हालाँकि, 1606 में अपने राज्याभिषेक के बाद से ही जहाँगीर ने राजकुमार परवेज को मेवाड़ में नियुक्त किया और उसे सलाह दी, ''यदि राणा स्वयं और उसका सबसे बड़ा पुत्र, जो करण कहलाता है, तुम्हारी प्रतीक्षा करने और सेवा और आज्ञाकारिता का लाभ उठाने के लिए आए, तो तुम्हें उसके क्षेत्र को कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए। इससे पता चलता है कि जहाँगीर युद्ध के पक्ष में नहीं था बल्कि शांतिपूर्ण समाधान चाहता था। मेवाड़ से परवेज को वापस बुलाने के बाद, अब्दुल्ला खान (1609) और राजा बासु (1612) जैसे शक्तिशाली कुलीनों को बड़ी सैन्य टुकड़ी के साथ मेवाड़ भेजा गया, लेकिन वे राणा और उसकी सेना को परास्त करने में सफल नहीं रहे। तत्पश्चात, 1613 में जहाँगीर ने एक सेना का गठन किया और राजकुमार खुर्रम की कमान में रखा और उसे अजमेर से मेवाड़ के अभियान के लिए विदा किया। लंबे समय तक युद्ध और कठिनाइयों के बाद राणा अमर सिंह को कुछ शर्तों के साथ मुगल आधिपत्य स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया गया। वे कुछ शर्तें ऐसी थी – राणा व्यक्तिगत रूप से मुगल सेना के प्रधान सेनापति राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) से मिलने आए, राणा के पुत्र राजकुमार करण सम्राट जहाँगीर के दरबार में जाए; राणा मुगल सेवा में भर्ती हो और प्रतिनिधि रूप से 1000 घुड़सवार सेना के साथ सेवा करे। महत्वपूर्ण शर्तों में से एक यह थी कि राणा को चितौड़ के किले को वापस कर दिया जाए लेकिन इसे मजबूत और मरम्मत करने की अनुमति नहीं दी गई। राणा अमर सिंह और राजकुमार खुर्रम के बीच मुलाकात सौहार्दपूर्ण रही। समझौते को सम्राट जहाँगीर ने मंजूरी दे दी और एक फरमान (राजा का आदेश) भेजा जिसमें इस समझौते की पुष्टि करते हुए राणा को 5000 के पद से सम्मानित किया गया। इसके बाद राजकुमार करण मुगल दरबार में गया जहाँ उसका भव्य स्वागत किया गया। मुगल शिष्टाचार के अनुसार, करण को मुगल शासक परिवार द्वारा सम्मानित किया गया था। *तुजुक–ए–जहाँगीरी* में निहित कुछ आख्यान इस बात को स्पष्ट करते हैं। जब करण दरबार पहुँचा तो जहाँगीर ने राणा अमर सिंह और करण की दो मूर्मियाँ तराशने का आदेश दिया। जहाँगीर के शब्दों में, ''मैंने राणा और उसके पुत्र करण की पूर्ण आकार की आकृतियों को संगमरमर से तराशने के लिए त्वरित–हाथ वाले पत्थर काटने वालों को आदेश दिया था। इस दिन वे पूर्ण हुए और मुझे सौंपे गए। मैंने उन्हें आगरा ले जाने और झरोका (प्रदर्शनी–खिड़की) के नीचे बगीचे में रखने का आदेश दिया।'' यहाँ, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मूर्तियों या जीवित छवियों को इस्लामी विश्वास के प्रतिकूल माना जाता है,

लेकिन इस बात की परवाह किए बिना राणा और राजकुमार करण को इस सम्मान से सम्मानित किया गया।

जहाँगीर करण को शिकार पर भी ले गया। वह कहता है, ''मैं करण को अपने साथ ले गया, और उससे कहा कि मैं बाघ वहीं मारूँगा जहाँ वह चाहता है कि मैं ऐसा करूँ। इस व्यवस्था के बाद मैं उस जगह गया जहाँ उन्होंने बाघ को चिन्हित किया था। संयोग से हवा में अशांति थी और मादा हाथी जिस पर मुझे सवार किया गया था, वह बाघिन से डर गई थी और वह स्थिर खड़ी रहने में समर्थ नहीं हो पा रही थी। शिकार में इन दो बड़ी बाधाओं के बावजूद, मैंने सीधे उसकी आँख की ओर गोली मारी। सर्वशक्तिमान ईश्वर ने मुझे उस राजकुमार के सामने शर्मिंदा नहीं होने दिया, और मैंने उसकी आँख में गोली मार दी। उसी दिन करण ने मुझे एक विशेष बंदूक के लिए अर्जी दी, और मैंने उसे एक विशेष तुर्की बंदूक दी।'' करण को दरबार में कई कीमती वस्तुओं से सम्मानित भी किया गया। कई घोड़े, हिरण, अरबी कुत्ते, कश्मीरी कपड़े का एक काबा (कोट) उसे भेंट किया गया। उसे मुगल हरम में ले जाना एक दुर्लभ उपकार था, जहाँ नूरजहाँ बेगम ने उसे सम्मान की एक मुगल पोशाक (खिल्लत), एक तलवार, एक घोड़ा और काठी और एक हाथी प्रदान किया। मुगल शासक परिवार से यह शानदार स्वागत प्राप्त करने के बाद, करण पूरी धूमधाम के साथ अपने वतन वापस चला गया। 1620 में राणा अमर सिंह की मृत्यु के बाद, जहाँगीर ने राजा किशन दास को उसके पिता राणा अमर सिंह की मृत्यु पर शोक व्यक्त करने के लिए उदयपुर भेजा। करण को मेवाड़ का अगला राणा बनने पर भी बधाई दी गई। जहाँगीर ने उसे उसके पुश्तनी पद पर स्वीकार किया और उसे राणा की पुश्तैनी उपाधि, सम्मान का वस्त्र, एक घोड़ा और एक हाथी प्रदान किया।

4.5 राजपूत और शाहजहाँ

परवर्ती मुगल–राजपूत संबधों को समझने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि (1) अपने पिता जहाँगीर की तरह, खुर्रम या शाहजहाँ ने भी विद्रोह किया था, (2) कुलीन वर्ग बादशाह जहाँगीर और विद्रोही राजकुमार शाहजहाँ के बीच विभाजित हो गया था, ऐसा ही राजपूत कुलीनों का मामला था, (3) शाहजहाँ ने अपने राज्याभिषेक के बाद उन राजपूत कुलीनों और अन्य लोगों को पुरस्कृत किया जिन्होंने उसका साथ दिया था।

4.5.1 मुगल कुलीन वर्ग में राजपूतों की बढ़ती हिस्सेदारी

1622 में जब राजकुमार, खुर्रम ने विद्रोह किया, तो पिछले अनुभव वाले कुलीनों ने विद्रोही राजकुमार के साथ जाने में सतर्क रहे। इस प्रकार कुछ कुलीन ऐसे भी थे जिन्होंने राजकुमार के प्रति ढुलमुल रवैया दिखाया, लेकिन ऐसे कुलीन भी थे जो राजकुमार की सेवा में शामिल हो गए। विद्रोह की अवधि के दौरान, भीम सिसोदिया जैसे राजपूत प्रमुखों ने राजकुमार का समर्थन करने का जोखिम उठाया और बिलोचपुर की लड़ाई में खुद को प्रतिष्ठित किया। फलस्वरूप, उसे 5000/5000 के मनसब और महाराजा की उपाधि से पुरस्कृत किया गया। टोंस की लड़ाई से पहले जिसमें भीम मारा गया था, उसने शाहजहाँ की सेवा में 6000/5000 का दर्जा हासिल कर लिया था। 1624 में जब शाहजहाँ बिहार में था, उज्जैन के प्रमुख नारायण मल और उनके भाई प्रताप 5000/5000 और 3000/2000 के मनसब के साथ शाहजहाँ की सेवा में शामिल हुए। नारायण मल के अन्य भाइयों के मनसब की राशि

2000/1000 थी। राजकुमार का समर्थन करने वाले कुलीनों को मुगल साम्राज्य की कमान संभालने के पश्चात् शाहजहाँ ने पुरस्कृत किया। उदाहरण के लिए, राजकुमार के पक्ष में अपनी जान गंवाने वाले गोपाल और बलराम गौर के वंशज शाहजहाँ के प्रिय बन गए। गोपाल दास के पुत्र बेथल दास को 3000/1500 के मनसब के साथ शाही सेवा में शामिल कर लिया गया। उसे राजा की उपाधि भी दी गई थी और साथ ही में एक झंडा, एक घोड़ा, हाथी और 30,000 रूपए भी दिए गए। उसकी मेधावी सेवाओं के लिए उसे पदोन्नति और अन्य उपकार मिलते रहे। उसकी मृत्यु से पहले 1651 में उसे मुगल पदानुक्रम में 5000/5000 के उच्चतम मनसब के साथ 2000 दो अस्पा सिह अस्पा से सम्मानित किया गया था। कई महत्वपूर्ण पद जैसे रणथम्भौर किले की किलादारी, उसके बाद आगरा का किला उसे सौंपा गया। उसे अजमेर और आगरा जैसे महत्वपूर्ण सूबों का सूबेदार भी नियुक्त किया गया था। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह बात थी कि उसे स्थायी आवासीय जागीर दिया गया था और वतन जागीर में उसे धंधेरा दिया गया था। शिव राम के पुत्र बलराम को 1500/1000 के मनसब के साथ शाही सेवा में नियुक्त किया गया था। शाही सेवा में उनकी संख्या बढ़ती रही। शाहजहाँ के शासनकाल के अंत तक मुगल सेवा में उनकी संख्या बढ़कर 12 हो गई। इसी तरह अमरकोट के सोढा प्रमुख, जिसने भगोड़े हुमायूँ और उसकी गर्भवती पत्नी हमीदा बानो बेगम को आश्रय दिया था और जहाँ अकबर का जन्म हुआ था, शाहजहाँ के काल तक मुगल सेवा में कोई स्थान नहीं पाने के लिए चिन्हित किये जा सकते हैं। राणा जोधा, जिसने विद्रोही राजकुमार खुर्रम को अपने क्षेत्र से गुजरने में मदद प्रदान की थी, को 800/300 के मनसब से पुरस्कृत किया गया। शाहजहाँ के शासनकाल में सेवा में शामिल होने वाले अन्य राजपूत प्रमुख दूर–दराज के क्षेत्रों से थे। इन राजपूत सरदारों ने पिछले सेवारत राजपूत प्रमुखों की बढ़ती बेहतर सामाजिक आर्थिक स्थिति को देखते हुए और शक्तिशाली केंद्रीय शक्ति को देखते हुए मुगल नौकरशाही का हिस्सा बनने में कोई संकोच नहीं किया। इनमें किश्तवाड़ के राजा कुंवर सेन (मनसब 1000/300), चंबा के सूरज राजा पृथ्वी चंद (मनसब 1000/400), कुमाऊ के सोमबंसी तिलक चंद (मनसब 800/400), सोंगर चतरभुज (मनसब 500/500), नाहर सोलंकी (मनसब 500/400), जादोन राजा जगमन और मुकुंद (मनसब 500/300 प्रत्येक), झाला रावत दयाल दास (मनसब 500/250) और राजा किशन सिंह तंवर (मनसब 800/400) थे।

मुगल सेवा में विभिन्न कुलों के पारंपरिक राजपूत प्रमुख मुगल नौकरशाही में उच्च पदों का आनंद लेते रहे। वे कछवाहा और राठौर थे। शाहजहाँ के काल में मनसबों और पदों पर उनकी संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई। 1621 में, कछवाहा और राठौर प्रत्येक 07 और 07 थे और 13,200/6450 और 15700/7450 के मनसब उनके पास थे, जबकि 1657 में शाहजहाँ के शासन के अंत में उनकी संख्या बढ़कर 14 और 23 हो गई थी तथा मनसब 18,700/18500 और 28.950/24,230 हो गए थे। पुराने और अनुभवी कुलीन इस बात से अवगत थे कि सम्राट जहाँगीर उन लोगों को नापसंद करता था जिन्होने उसके खिलाफ विद्रोही खुसरो का साथ दिया था। इस कारण मिर्जा राजा जय सिंह सतर्क था और जहाँगीर का साथ देता रहा, परन्तु बाद में शाहजहाँ की निकटस्थ सफलता को देखते हुए उसके पास चला गया। शाहजहाँ ने सम्राट बनने पर उसे 4000 दो अस्पा सिह अस्पा के साथ 5000/5000 के उच्चतम पद से पुरस्कृत किया।

शाहजहाँ की माँ जोधपुर शासक परिवार की राठौर राजकुमारी थी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शाहजहाँ के मन में राठौरों के लिए नरमी थी। यह एक कारण है कि उनकी संख्या

और मनसब, दोनों ही आमेर जयपुर के पारंपरिक राजपूत कछवाहा वंश से आगे निकल गए थे। हाडा प्रमुख रतन सिंह, जिसने सरलबुलंद राय की उपाधि प्राप्त की थी, जहाँगीर के शासनकाल की शुरुआत से ही उसके द्वारा की गई वफादार सेवाओं के लिए जहाँगीर का पसंदीदा था। वह शाहजहाँ के विद्रोह के समय जहाँगीर के पक्ष में मजबूती से खड़ा रहा। बुरहानपुर में शाहजहाँ की सेना के साथ झड़प में सरबुलंद राय, जो वहाँ हाकिम के रूप में तैनात था, ने स्वयं को प्रतिष्ठित किया। उसके पुत्र, गोपीनाथ ने जिसने युद्ध के मैदान से भागने का विकल्प चुना था, उसके पिता द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। अंत में जब शाही सेना दक्कन में विद्रोहियों को हराने में सफल रही, तो उसकी वफादार सेवाओं के लिए पुरस्कर के रूप में, सरबुलंद राय को राम राय की उपाधि के साथ 2500/1500 से 5000/5000 तक पदोन्नत किया गया था जिसे दक्कन में सर्वोच्च सम्मान माना जाता था। इसके अलावा, इस अवधि के दौरान, सरबुलंद राय के पुत्र माधो सिंह और उसके भाई हृदय नारायण के पास 1000/600 और 1200/600 के मनसब थे। हालाँकि, शाहजहाँ अपने राज्याभिषेक के पश्चात् हाड़ाओं को नज़रअंदाज नहीं कर सकता था, लेकिन वह उन्हें नापसंद करता था। प्रारंभ में शाहजहाँ ने रतन सिंह और उसके पुत्र माधो सिंह को उनके मनसब 5000/5000 और 1000/600 पर पुष्टि की। 1631 में रतन सिंह की मृत्यु के बाद, उसका क्षेत्र बुंदी दो भागों में विभाजित कर दिया गया था। उसके पुत्र माधो सिंह को 2500/1500 के मनसब के साथ कोटा और फलैता के परगना सौंपे गए और उसके पोते सतरसाल को बूंदी और कांकड़ के परगने 3000/2000 के मनसब के साथ राव की उपाधि प्रदान भी की गयी थी। यह माधो सिंह था जिसने विद्रोही खान–ए–जहाँ लोदी का पीछा किया और उसे मार डाला और बाद में विशेष रूप से विद्रोहियों, खान–ए–जहाँ लोदी और जुझार सिंह के खिलाफ मेधावी सेवाएं प्रदान करने के लिए, उसे 3000/2000 के मनसब से सम्मानित किया गया। शाहजहाँ के साथ दक्खन जाने वाले सतरसाल ने शाहजी भोंसले के खिलाफ अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और उसे 3000/3000 के मनसब पर पदोन्नत किया गया था। शाहजहाँ के शासनकाल के अंत में, बल्ख, बदख्शाह, काबुल और दक्कन में सेवाएँ प्रदान करने के बाद, 4000/4000 में पदोन्नत किया गया था। माधो सिंह की मृत्यु (1648) के बाद, उसके बेटे मुकुंद सिंह और मोहन सिंह को शाही सेना में ले लिया गया और उन्होंने 3000/2000 और 800/400 की पदोन्नति अर्जित की।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न कुलों के राजपूत कुलीनों ने मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। उन्हें कई किलों की सूबेदारी, फौजदारी, थानेदारी और किलादारी जैसे महत्वपूर्ण पद सौंपे गए थे। राजा बिठल दास को अजमेर के एक अहम सूबे में नियुक्त किया गया था और उसके बेटे अनिरूद्ध को उसका प्रतिनिधि बनाया गया। दिल्ली, चाकला, हिसार, बंगश, कोह–कांगड़ा काबुल और दौलताबाद की फौजदारी उन्हें सौंपी गयी थी। इसी तरह उन पर इतना भरोसा किया गया कि कई किलो को उनकी देखरेख में कर दिया गया। आगरा, रणथंभौर, दौलताबाद, असीर, कुलत (कंधार), काबुल और मांडू जैसे किलों की किलादारी उन्हें दे दी गई थी।

4.5.2 मेवाड़ और शाहजहाँ

1615 से 1654 तक राणाओं और मुगलों के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण बने रहे, लेकिन जब 1652 के अंत में, राणा करण के उत्तराधिकारी राणा जगत सिंह ने 1615 की संधि का उल्लंघन करते हुए चितौड़ के किले की मरम्मत शुरू कर दी, तो सम्राट शाहजहाँ ने इसे गंभीरता से

लिया। मेवाड़ क्षेत्र के कठिन पहाड़ी इलाको में अपने पिछले अभियानों का अनुभव होने की वजह से शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर के नक्शे कदम पर चलते हुए एक सेना को संगठित करने और स्वयं ही अभियान की निगरानी करने का फैसला किया और अजमेर पहुँचा। उसने वजीर सदुल्लाह खान को 30,000 की सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त किया। उसके साथ कई उच्च कोटि के कुलीन भी थे। चित्तौड़ पहुँचने के बाद, मुगल सेना ने राणा द्वारा किए गए मरम्मत कार्यों को ध्वस्त करना शुरू कर दिया। पिछली लड़ाइयों के विनाशकारी परिणामों को ध्यान में रखते हुए दोनों पक्षों ने शांतिपूर्ण समाधान का फैसला किया। राणा राज सिंह ने अपने दूतो के माध्यम से क्षमा याचना की और केंद्र सरकार को 1615 की संधि के नियमों और शर्तों का पालन करना जारी रखने का आश्वासन दिया। अधीनता के प्रतीक के रूप में, राणा ने राजकुमार को मुगल दरबार में भेज दिया। इसके बाद, केंद्र और मेवाड़ के राणाओं के बीच संबंध काफी हद तक मुगल साम्राज्य के बेहतर दिनों तक 1615 के समझौते के अनुसार ही चले।

4.6 राजपूत और उत्तराधिकार का युद्ध

शाहजहाँ के शासनकाल के अंत में, उसके चार बेटे – दारा शुकोह, शुजा, औरंगजेब और मुराद अगला मुगल सम्राट बनने की इच्छा रखते थे, और उन्होंने अपने पिता के खिलाफ किसी न किसी वजह से विद्रोह कर दिया। इस समय दारा अपने पिता के साथ राजधानी दिल्ली में था, शुजा बंगाल में था, औरंगजेब दक्कन में था और सबसे छोटा मुराद गुजरात में था। फिर से राजपूत कुलीनों सहित मुगल कुलीनों को यह तय करना था कि उन्हें किसका साथ देना चाहिए। फिर से अपने स्वार्थ और मुनाफे के अनुसार, उन्होंने विभिन्न राजकुमारों का पक्ष लिया। अजमेर के पास देवराई की निर्णायक लड़ाई से पहले दारा के नेतृत्व वाली शाही सेना और औरंगजेब और मुराद की सेनाओं के बीच धरमत और सामुगढ़ में दो प्रमुख युद्ध हुए। जहाँगीर और शाहजहाँ के विद्रोहों के पहले के मामलों की तरह, इस मामले ने भी राजपूतों सहित कुलीनों को विरोधी ताकतों के बीच विभाजित किया था।

राजपूत कुलीनों ने किसी भी अन्य नस्लीय समूह की तरह राजकुमारों को उनकी पसंद और मुनाफे के अनुसार समर्थन किया। क्योंकि राजकुमार दारा को सम्राट शाहजहाँ का खुले तौर पर पूर्ण शाही समर्थन प्राप्त था, इस कारण बड़ी संख्या में दारा को राजपूत कुलीनों का समर्थन प्राप्त था। राजा जसवंत सिंह और मिर्जा राजा जय सिंह जैसे सबसे वरिष्ठ और शक्तिशाली राजपूत कुलीनों ने दारा शुकोह के नेतृत्व वाली शाही सेना का पक्ष लिया। शाहजहाँ की गंभीर बीमारी और उसकी मृत्यु की अफवाह ने शुजा को बंगाल से आगरा के लिए प्रस्थान करने के लिए प्रेरित किया। यह सूचना मिलने पर शाहजहाँ ने सुलेमान शुकोह के नेतृत्व में मिर्जा राजा जय सिंह और अनिरूद्ध सिंह गौड़ के साथ एक सेना भेजी। इस मौके पर मिर्जा राजा को 6000/6000 के साथ 5000 दो अस्पा सिह अस्पा और अनिरूद्ध को 3500/3000 तथा दो अस्पा सिंह अस्पा के साथ पदोन्नत किया गया। राजा जसवंत सिंह को 7000/7000 के पद पर पदोन्नत किया गया। कई राजपूत कुलीनों के साथ राजा जसवंत सिंह के अधीन एक शक्तिशाली सेना औरंगजेब और मुराद की शक्तिशाली जोड़ी को रोकने के लिए प्रतिनियुक्त की गयी थी जो आगरा की ओर जा रहे थे। दूसरी ओर, अन्य राजपूत कुलीन जो दक्कन में औरंगजेब के साथ और गुजरात में मुराद के साथ तैनात थे। उन्होंने धरमत की लड़ाई में शाही सेनापति राजा जसवंत सिंह के खिलाफ लड़ाई लड़ी। राजा

जसवंत सिंह औरंगजेब और मुराद की सेना से हार गया था। मुराद ने दारा का साथ देने के बजाय औरंगजेब के साथ रहना पसंद किया। जसवंत सिंह के साथ लड़ने वाले कई राजपूत कुलीन युद्ध में मारे गए। निराश जसवंत सिंह अपने वतन जोधपुर के लिए रवाना हो गया। कई अन्य राजपूत कुलीनों ने भी ऐसा ही किया और अपने गृह क्षेत्रों के लिए रवाना हो गए।

अगला युद्ध औरंगजेब और मुराद के विरूद्ध दारा शुकोह की कमान में सामुगढ़ में लड़ा गया। दारा को औरंगजेब और मुराद ने हराया। वह दिल्ली और फिर पंजाब भाग गया। दोनों ओर से कई राजपूत कुलीन मारे गये और घायल हुए। औरंगजेब और मुराद की तरफ से गरीब दास सिसोदिया मारा गया और शुभकरण बुंदेला गंभीर रूप से घायल हो गया। औरंगजेब की ओर से लड़ाई लड़ने वाले बुंदेला प्रमुख देवी सिंह को भीलसा के फौजदार के रूप में नियुक्त करके पुरस्कृत किया गया था।

राणा राज सिंह सिसोदिया, जो दोनों दावेदार पक्षों से दूरी बनाए हुए था, ने औरंगजेब को इस जीत पर बधाई दी। कई राजपूत कुलीनों के पास कोई विकल्प नहीं था, और वे औरंगजेब के पक्ष में चले गए। मिर्जा राजा जय सिंह और नागौर के राव राय सिंह राठौर सुलेमान शुकोह को छोड़कर मथुरा में औरंगजेब के साथ हो गए थे। औरंगजेब ने मिर्जा को एक करोड़ दाम की जागीर से पुरस्कृत किया।

अंतिम और निर्णायक लड़ाई अजमेर के पास अरावली पर्वतमाला के एक हिस्से देवराई में लड़ी गई थी। इसका व्यूहात्मक महत्व था। सिंध से भागकर दारा और उसकी सेना ने देवराई में मोर्चा संभाल लिया। राजा जसवंत सिंह और राणा राज सिंह द्वारा दारा को संभावित समर्थन को लेकर औरंगजेब काफी चितिंत था। यह औरंगजेब द्वारा राणा राज सिंह को लिखे गए प्रसिद्ध निशानों से स्पष्ट होता है। उसने राणा को आश्वासन दिया कि वह अपने पूर्ववर्तियों की तरह धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पालन करेगा। उसने राणा को वे सारे क्षेत्रों को वापस कर देने का भी प्रस्ताव रखा जो 1654 में राणा से चितौड़ के किले के पुनर्निर्माण के लिए दंड के रूप में ले लिए गए थे, हालांकि, राणा और जसवंत सिंह ने इस लड़ाई में भाग नहीं लिया। औरंगजेब की ओर से, मऊ–नूरपुर के राजा राजरूप सिंह कोहिस्तानी और उसके सैनिक, जो पहाड़ी क्षेत्र में लड़ने में कुशल थे, पीछे की ओर से पहाड़ी पर चढ़ गए और दारा की सेना पर हमला कर दिया। आखिरकार, यह अगले मुगल सम्राट औरंगजेब के पक्ष में एक निर्णायक लड़ाई साबित हुई।

4.7 औरंगजेब और राजपूत

अकबर के समय से राजपूत प्रमुख मुगल राज्य व्यवस्था में धीरे–धीरे बहुत महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरे थे और कोई भी मुगल सम्राट उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। इस कथन की गवाही एक फ्रांसीसी यात्री, चिकित्सक और एक मुगल कुलीन के कर्मचारी फ्रेंकोइस बर्नियर द्वारा प्रमाणित है। उसने कहा, ''महान मुगल, हालांकि एक मुसलमान और अन्य जातियों (हिंदुओं) के दुश्मन, हमेशा अपनी सेवा में राजाओं का एक बड़ा दल रखता है, उन्हें अपने अन्य उमराओं के समान ही मानता है, और उन्हें महत्वपूर्ण आदेशों के लिए अपनी सेना में नियुक्त करता है।'' इस प्रकार औरंगजेब के काल में भी उनकी संख्या, मनसब और नौकरशाही के पदों में काफी वृद्धि हुई। राजा जसवंत सिंह को 7000/7000 के पद के साथ 5000 दो अस्पा सिह अस्पा दिया गया और दो बार उसे गुजरात (1659–61 और 1670–72)

का सूबेदार नियुक्त किया गया था। उमदत–उल मुल्क के खिताब के साथ मिर्जा राजा जय सिंह ने 7000 / 7000 और राणा राज सिंह ने 6000 / 6000 के पद को हासिल किया। अन्य वंशानुगत और पारंपरिक राजपूत शाही सेवा में बने रहे और साम्राज्य के धन (जागीर), शक्ति (मनसब), और नौकरशाही पदों (कार्यालयों) को साझा किया।

औरंगजेब के दक्कन में लंबे समय तक रहने, अभियानों पर भारी खर्च, मुगल सेवा में दक्खनी और मराठा कुलीनों की बढ़ती संख्या और साम्राज्य की थम गयी आय ने कई जटिल समस्याएं पैदा की। जजिया का पुनः अधिरोपण, हिंदु व्यापारियों पर कर, भू राजस्व की वसूली का कठोर तरीका और किसानों से उपजी समाज में बैचेनी पैदा हुई। गरीब किसानों के पास सरकार के खिलाफ विद्रोह के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इन प्रतिक्रियावादी अभिव्यक्तियों को मुगल साम्राज्य के पतन की शुरुआत के रूप में देखा जाता है। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और मुगल शासन और साम्राज्य को चरमराती स्थिति में छोड़ गया।

4.8 हस्तक्षेप का विरोधः राठौर विद्रोह

मुगल सम्राट औरंगजेब और जोधपुर के राठौड़ों के बीच प्रमुख संघर्षों में से एक जोधपुर की गद्दी के उत्तराधिकार का मुद्दा था। 1678 में जसवंत सिंह की पेशावर में मृत्यु हो गई, जहाँ वे तैनात किए गए थे। उसकी मृत्यु के समय राजा पर शाही खजाने की भारी कर्ज था। सरकार द्वारा कर्ज के ऐसे मामलों में, तूरानी, ईरानी, राजपूत या अन्य जाति के मृत कुलीनों की संपत्ति को राजकीय नियंत्रण में ले लिया जाता था और वह साम्राज्य के शाही खजाने में शामिल कर दिया जाता था। इस प्रकार मुगल शासन नीति के अनुरूप, मृतक राजा जसवंत सिंह की पूरी संपत्ति को मुगल अधिकारियों ने अपने कब्जे में ले लिया। इसके अलावा, औरंगजेब ने दो परगनाओं को छोड़कर पूरे मारवाड़ राज्य को खालीसा में मिलाने का आदेश दिया। औरंगजेब का यह निर्णय सरदारों को पसंद नहीं आया और इससे पूरे मारवाड़ में बवाल मच गया। दूसरी ओर, मृत्यु के समय राजा ने कोई पुरूष वारिस नहीं छोड़ा था लेकिन उनकी दो विधवाएँ गर्भवती थी। इसी बीच खबर आई कि मृतक राजा की दोनों पत्नियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। वे थे अजीत सिंह और दलथंभान। नवजात शिशुओं की वास्तविकता के सत्यापन के लिए शाही दरबार में लाया गया। शीघ्र ही दलथंभान की मृत्यु हो गई थी लेकिन अजीत सिंह दिवंगत राजा के उत्तराधिकारी हो सकते थे। यह भी स्पष्ट किया गया था कि उत्तराधिकारी के लिए न तो कोई महिला और न ही कोई नौकर चुना जा सकता था। इस मामले की बेहतर समझ के लिए, राजपूत राज्यों में उत्तराधिकारी के लिए पिछली परंपराओं और प्रथाओं पर एक नजर डालना महत्वपूर्ण है।

राजपूत प्रमुखों द्वारा अकबर की सेवा में शामिल होने के बाद से, उत्तराधिकार निर्धारण का अधिकार केंद्रीय शक्ति के पास था। बांधवगढ़–रीवा के बघेला राजपूत के मामले में, जब राजा बीर बहादुर की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, तो बांधवगढ़ के लोगों ने बांधवगढ़ के राजा बीर बहादुर के दूर के रिश्तेदार बिक्रमजीत को राजा बनाना चाहा लेकिन अकबर ने इसे अस्वीकार कर दिया। अकबर की अस्वीकृति का विरोध किया गया और बांधवग में बड़े पैमाने पर अशांति का कारण बना। आठ महीने से अधिक लंबे अभियान के बाद, शाही सेना ने इस क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया और राजा राम चंद के पोते दुर्जोधन को बांधवगढ़ का राजा घोषित किया गया।

इसके अलावा इस तरह के अधिकार का प्रयोग सम्राट जहाँगीर ने आमेर के राजा मान सिंह की मृत्यु के बाद किया था। स्वर्गीय मान सिंह के सबसे बड़े पुत्र जगत सिंह की राजा के जीवन काल में मृत्यु हो गई थी। इसलिए, उत्तराधिकार जगत सिंह के पुत्र महासिंह के पास जाना चाहिए था, परंतु जहाँगीर ने महासिंह के बजाय, मृतक मान सिंह के दूसरे बेटे भाओ सिंह को आमेर की गद्दी प्रदान की। इस प्रकार, प्रत्यक्ष वंशावली को जगत सिंह के परिवार से उसके दूसरे बेटे भाओ सिंह से बदल दिया गया था। 1621 में जब भाओ सिंह की मृत्यु हो गई और उसने कोई पुत्र नहीं छोड़ा अपने उत्तराधिकारी के तौर पर, तो जहाँगीर ने महासिंह के पुत्र जय सिंह को उत्तराधिकारी बना दिया। इस प्रकार, फिर से आमेर के नियंत्रण का अधिकार मृतक राजा मान सिंह की सीधे वंशावली में चला गया। इसके अलावा बीकानेर के मामले में, जब 1612 में राव राय सिंह की मृत्यु हो गई थी, तो जहाँगीर ने राव के द्वारा चुने गए उसके उत्तराधिकारी बेटे सूरज सिंह को उत्तराधिकार देने के बजाय दूसरे बेटे दिलीप सिंह को उत्तराधिकार दे दिया। अन्य राजपूत शासक परिवारों के विपरीत, जोधपुर के शासक राठौर परिवार में उत्तराधिकार के लिए थोड़ी अलग परंपरा थी। सबसे बड़े बेटे के बजाय, राजा की सबसे प्यारी रानी के बेटे को मृतक राजा के अगले उत्तराधिकारी के रूप में पसंद किया जाता था। राजा उदय सिंह, जो मोटा राजा के नाम से जाना जाता था, की मृत्यु 1596 में हो गई और उसके मरने के उपरान्त उस परंपरा का पालन करते हुए, मृत राजा की इच्छा के अनुसार, सम्राट अकबर ने राजा सूर सिंह को उत्तराधिकार प्रदान किया।

हालांकि उदय सिंह का बड़ा बेटा था, लेकिन चूंकि सूर सिंह की माँ सबसे प्यारी रानी थी, इसलिए उदय सिंह ने सूर सिंह को अपना उत्तराधिकारी चुना। इसी तरह, राजा गज सिंह ने बादशाह शाहजहाँ से कहा था कि उसकी मृत्यु के बाद उसके सबसे बड़े बेटे अमर सिंह के बजाय, सबसे छोटे बेटे जसवंत सिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाया जाए। इस प्रकार 1637 में गज सिंह की मृत्यु के बाद, शाहजहाँ ने ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंह के स्थान पर जसवंत सिंह को उत्तराधिकार दे दिया।

अमर सिंह के लिए नई वतन जागीर बनाई गई। वह पहले से ही मुगल सेवा में था और उसे राव की उपाधि के साथ 3000 जात और 3000 सवार से सम्मानित किया गया था। नव निर्मित वतन जागीर नागौर उसे प्रदान किया गया। इस प्रकार अमर सिंह अपने प्रमुखों के साथ नागौर चला गया। नतीजन, जोधपुर के राठौर सरदार दो गुटो में विभाजित हो गए जैसा कि नीचे दर्शाया गया हैः

(i) जसवंत सिंधी या जोधपुरी सरदार

(ii) अमर सिंधी या नागोरी सरदार

उपरोक्त उदाहरणों से निम्नलिखित बातें सामने आती हैंः

(i) उत्तराधिकार का अधिकार केंद्रीय शक्ति के पास था न कि किसी राजपूत राज्य के सरदारों के पास।

(ii) वंश–क्रम नहीं बदली जाएगी और यह मृतक मुखिया के शासक परिवार में बनी रहेगी।

(iii) मृतक राजपूत प्रमुख के पुरूष उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में मृतक के निकटतम रक्त संबंधी को उत्तराधिकार दिया जा सकता था।

उपरोक्त राजपूत परंपराओं और मिसालों को ध्यान में रखते हुए, औरंगजेब ने मृतक राजा के निकटतम परिवार के सदस्य को उत्तराधिकार देने का फैसला किया। परिवार के निकटतम सदस्य जसवंत सिंह के बड़े भाई अमर सिंह का पोता इंदर सिंह था। इंदर सिंह ने उत्तराधिकार शुल्क के रूप में छत्तीस लाख रूपए का भुगतान किया। यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अन्य निकटतम राठौर शासक परिवार बीकानेर का था। बीकानेर के राव कर्ण के पुत्र अनूप सिंह ने पैंतालीस लाख रूपए की उत्तराधिकार शुल्क की उच्च्य राशि की पेशकश की लेकिन औरंगजेब ने उसके प्रस्ताव और उम्मीदवारी को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह स्वर्गीय जसवंत सिंह का दूर का रिश्तेदार था। अतः औरंगजेब ने इंदर सिंह को टीका प्रदान किया। इस आदेश के खिलाफ जोधपुर में तीखी प्रतिक्रिया हुई, जैसा कि सरकार और जसवंत सिंह की विधवा रानी हाड़ी, जो जोधपुरी सरदारों का प्रतिनिधित्व कर रही थी, के बीच हुए पत्र–व्यवहार से स्पष्ट होता है। इन पत्राचारों से स्पष्ट होता है कि रानी हाड़ी और जोधपुरी सरदार किसी भी कीमत पर जोधपुर के अगले प्रमुख इंदर सिंह को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। पहले वे जोधपुर को खालिसा में शामिल करने का विरोध कर रहे थे, लेकिब अब उन्होंने यह तर्क दिया कि वे जोधपुर को इंदर सिंह को सौंपने के बजाय खालिसा में शामिल करना पसंद करेंगे। अगर अजीत सिंह को टीका दिया जाए, तो उन्होंने इंदर सिंह से भी ज्यादा उत्तराधिकार शुल्क देने की पेशकश की। दूसरी ओर, इंदर सिंह ने शाही सेना के समर्थन से जोधपुर की गद्दी पर अधिकार करना शुरू कर दिया। लेकिन वह जोधपुर में बेहद अलोकप्रिय था। इस बात की जानकारी जोधपुर में तैनात मुगल अधिकारी औरंगजेब को दे रहे थे। इसी बीच दुर्गादास और उसके साथी अजीत सिंह को मुगल दरबार से बाहर निकालने में कामयाब हो गए। इस घटना ने इस मामले को और अधिक जटिल बना दिया, जब औरंगजेब ने असली अजीत सिंह को सत्यापित करने से इनकार कर दिया, लेकिन नकली अजीत सिंह को असली के रूप में स्वीकार कर लिया। हालांकि इंदर सिंह और उसके अधिकारियों को जोधपुर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। किन्तु प्रारंभ में, औरंगजेब अजीत सिंह के उत्तराधिकार के खिलाफ नहीं था, पर उसे एक शिशु राजकुमार को उत्तराधिकारी बनाना उचित नहीं लग रहा था। उसने जोधपुरी सरदारों, सोनंग, रघुनाथ दास भाटी, रणछोर, दुर्गा दास, आदि को यह कहकर भी आश्वस्त किया था कि जब अजीत सिंह बड़े होंगे तो उन्हें मनसब और राज दिया जाएगा। जोधपुर में तैनात कुछ मुगल अधिकारियों को जोधपुर सरदारों से सहानुभूति थी। बहादुर खान कोकलताश, जो अन्य लोगों के साथ रानी हाड़ी द्वारा आयोजित अजीत सिंह के जन्मदिन समारोह में शामिल हुआ था, उसने औरंगजेब को अजीत सिंह को उत्तराधिकार देने का सुझाव दिया। ताहिर खान, जो अजीत सिंह से सहानुभूति रखता था, को अपना मनसब खोने की भारी कीमत चुकानी पड़ी। आखिरकार, जब इंदर सिंह सफलता पाने में असफल रहा, तब उसके हाथ से जोधपुर का सिंहासन चला गया और जोधपुर मुगल केंद्र सरकार के सीधे नियंत्रण में आ गया। जोधपुर सरदारों और मुगल सरकार के बीच संघर्ष जारी रहा। 1697 में जब अजीत सिंह 18 वर्ष की आयु का हुआ, तो औरंगजेब ने उसे 1500/500 का मनसब और जागीर में जालौर सौंप दिया। लेकिन अजीत सिंह और जोधपुरी सरदार जोधपुर को वतन जागीर बहाल किए बिना संतुष्ट नहीं थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद भी जोधपुर के राठौड़ों ने अपना संघर्ष जारी रखा। संघर्ष के इस पहलू का अध्ययन हम औरंगजेब के बाद के काल में करेंगे।

हालांकि मौटे तौर पर कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। वे हैंः (i) औरंगजेब राजपूत शासक परिवारों में उत्तराधिकार की पिछली प्रथाओं से विचलित नहीं हुआ।

(ii) मूल रूप से यह जोधपुर के राठौर शासक परिवार और नागौर के राठौर शासक परिवार के बीच सत्ता और प्रतिष्ठा का पारिवारिक झगड़ा था। (iii) अमर सिंधी सरदारों के जोधपुर वापस आने का अर्थ था जोधपुर राज्य में जोधपुरी सरदारों के विशेषाधिकार को धूमिल करना। जाहिर है यह जोधपुरी सरदारों को किसी भी कीमत पर मंजूर नहीं था।

4.9 औरंगजेब-काल के पश्चात

औरंगजेब के मरने के बाद, उसके बेटों में भी मुगल गद्दी के लिए लड़ाई छिड़ गई। उत्तराधिकार के लिए पहले के संघर्षों और अब के बीच एक बड़ा अंतर था। पहले के मामलों में, केंद्र काफी मजबूत था, लेकिन अब ऊपर बताए गए कारणों से यह कमजोर हो गया था। हालांकि यह समय किसी भी राजकुमार का समर्थन करने का निर्णय लेने के लिए कुलीनों के लिये चुनौतीपूर्ण समय होता था। एक जीवित सम्राट की अनुपस्थिति में और पहले के मामलों के विपरीत, शक्तिशाली कुलीनों ने अपना गुट बनाकर अपनी अपनी पसंद के राजकुमार का समर्थन किया। राजपूत कुलीनों के पास समर्थन करने के लिए उनकी पसंद का कोई राजकुमार नहीं था, लेकिन उन्हें मुगल दरबार में से ही किसी एक प्रतिद्वंद्वी राजकुमार के पक्ष में होना पड़ता था। हालांकि, इन समूहों के नेता चाहते थे कि सवाई जय सिंह, राजा अजीत सिंह, बुद्ध सिंह हाड़ा, राम सिंह हाड़ा और छत्रसाल बुंदेला जैसे राजपूत कुलीन उनका साथ दें। इस प्रकार उन्होंने परोक्ष रूप से इन गुटों के माध्यम से नए उत्तराधिकारी मुगल सम्राटों का समर्थन या विरोध किया। राजपूत सरदारों और बाद के मुगल बादशाहों के बीच संबंध समय–समय पर बनते–बिगड़ते रहे। जोधपुर, अजीत सिंह का वतन जो उसके पिता राजा जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद खालिसा क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया था, केंद्र सरकार के नियंत्रण में जारी रहा। राजकुमार आजम ने जयसिंह और अजीत सिंह का समर्थन हासिल करने के लिए उन्हें अपने पारंपरिक पारिवारिक खिताब मिर्जा राजा और महाराजा के साथ 7000/7000 के पद से सम्मानित किया। उन्हें और अधिक संतुष्ट करने के लिए, अजीत सिंह और जय सिंह को दो महत्वपूर्ण सूबों, गुजरात और मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। हालांकि जय सिंह आजम के साथ मालवा में शामिल हो गया था, लेकिन जाजू की लड़ाई में, उसने उसे छोड़ दिया। दूसरी ओर, जय सिंह के छोटे भाई विजय सिंह ने राजकुमार बहादुर शाह के साथ जाजू की लड़ाई में उसके पक्ष में लड़ाई लड़ी थी। जय सिंह को विस्थापित कर आमेर को वतन जागीर के तौर पर विजय सिंह को देकर पुरस्कृत किया गया। इस प्रकार दोनों राजा अजीत सिंह और जय सिंह असंतुष्ट रहे। जाजू की लड़ाई में, अजीत सिंह तटस्थ रहा और स्थिति का लाभ उठाते हुए थोड़े समय के लिए जोधपुर पर पुनः कब्जा कर लिया। बहादुर शाह ने उसके खिलाफ कार्यवाई की और अधीनता स्वीकार करने पर उसे महाराजा की उपाधि के साथ 3500/3000 का मनसब दिया परन्तु फिर से जोधपुर को केंद्र के नियंत्रण में ले लिया गया। यह अजीत सिंह को रास नहीं आया। असंतुष्ट अजीत सिंह ने मुगलों को चुनौती दी और युद्ध को फिर से चालू कर दिया। टकराव का एक और मुद्दा शासन का था। 1707 से 1732 की अवधि के बीच, बाद के चार मुगल बादशाहों बहादुर शाह, जहांदार शाह, फारूख सियार और मुहम्मद शाह के अधीन जय सिंह को आगरा और फिर मालवा का तीन बार सूबेदार बनाया गया, लेकिन गुजरात के सूबेदार बनने की अजीत सिंह की इच्छा को आसानी से स्वीकार नहीं किया गया था। उसे काबुल और फिर थट्टा के सूबेदार के पद की पेशकेश की गई लेकिन उसने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया और गुजरात के सूबेदार के पद की मांग की। बाद में, उसे 1714

और1719 में गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। जय सिंह ने जाटों, सिखों और मराठों के खिलाफ सेवाएं दी। अजीत सिंह ने भी सिखों के खिलाफ सेवाएँ प्रदान की। इसके बाद दोनों राजाओं को प्रसन्न करने के लिए, उनके अपने क्षेत्रों को उन्हें वापस दे दिया गया।

संक्षेप में राजपूत प्रमुख, भू–अभिजात वर्ग के रूप में और बड़ी संख्या में सैन्य कर्मियों के सेनापति के रूप में मुगल साम्राज्य के लिए एक महत्वपूर्ण घटक थे। क्षेत्रीय विस्तार के लिए उनकी शक्ति को समझने और उपयोग में लाने के लिए और अपने पक्ष में कुलीन वर्ग में शक्ति संतुलन को झुकाने के लिए अकबर की कुशाग्र बुद्धि सहायक बनी। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इन प्रमुखों द्वारा अपनी सेनाओं में हजारों साधारण सैनिकों को नियुक्त किया गया था। ये सैनिक अपनी बचत को अपने–अपने घर ले आए। अकबर द्वारा शुरू किए गए संबंध उसके उत्तराधिकारियों द्वारा जारी रहे। मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान, राजपूत प्रमुखों और अन्य प्रांतीय शक्तियों के पास अपने क्षेत्रों में वापस जाने और वैकल्पिक क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में अपनी स्थिति को मजबूत करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

4.10 सारांश

कृषि भूमि आधारित राजनीति को अपने कुलीन वर्ग के संबंध में हमेशा एक दुविधा का सामना करना पड़ता था। कुशल कुलीन वर्ग राज्य के हथियार थे, जिसने न केवल साम्राज्य के विस्तार में बल्कि शासन की संरचना को मजबूत करने में भी मदद की। हालांकि, कुलीन वर्ग में प्रथम संभव अवसर पर स्वतंत्रता की घोषणा करने की प्रवृत्ति थी। इसलिए इन दो परस्पर विरोधी संभावनाओं के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए प्रभावी राजाओं की ओर से कुलीन वर्ग की संरचना का प्रबंधन करने के प्रयास होते थे। कभी–कभी वैवाहिक गठजोड़ वफादारी सुनिश्चित करने के लिए बहुत ही प्रभावी माध्यम होते थे। मुगल–राजपूत संबंध ऐसी समझौता वार्ताओं की बहुत सूक्ष्म समझ प्रदान करते है। धर्म का सहारा लेना कुल मिलाकर राजनीतिक लाभ प्राप्त करने का एक प्रभावी जरिया था।

बोध प्रश्न 2

1) मुगल कुलीन वर्ग के चरित्र को पुर्नपरिभाषित करने में राजपूतों के महत्व की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

2) राठौर विद्रोह के चरित्र का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 4.2 देखें। यह उम्मीद की जाती है कि आपका उत्तर हिन्दुस्तान में गंगा–यमुना दोआब की राजनीति के साथ मुगलों के जुड़ाव को उजागर करेगा।

2) भाग 4.3 देखें। अकबर ने किस प्रकार राजपूताना के राजपूत शासकों के प्रति एक अलग नीति का पालन किया तथा मुगल साम्राज्य के विस्तार और समेकन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 4.3, 4.4 और 4.5 देखें। मुगल कुलीनवर्ग की संरचना और राजपूतों के समावेश के प्रभाव की जांच की जानी चाहिए।

2) भाग 4.8 देखें। राजपूत राज्यों में भी उत्तराधिकार एक बहुत ही विवादास्पद मुद्दा था। राजपूत रियासतों में उत्तराधिकार के संबंध में मुगलों की नीति की विस्तृत जांच की जानी चाहिए।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Chandra, Satish. 1982. *Medieval India: Society, the Jagirdari Crisis and the Village*. Delhi: MacMillan India.

Kothiyal, Tanuja. 2017. 'A 'Mughal' Rajput or a 'Rajput' Mughal? Some Reflections on Rajput-Mughal Marriages In the Sixteenth and Seventeenth Centuries', in Suraj Bhan Bhardwaj, R. P Bahuguna and Mayank Kumar, Eds., *Revisiting the History of Medieval Rajasthan: Essays for Prof Dilbagh Singh.* Delhi: Primus Books, pp.264-95.

Taft Frances F. 1994. 'Honor and Alliance: Reconsidering Mughal-Rajput Marriage', in Karine Schomer, Joan L. Erdman, Deryck O. Lodrick and Lloyd I. Rudolph, eds., *The Idea of Rajasthan*, Vol. 1. Delhi: Manohar, pp. 217-41.

Zaidi, S Inayet. 1994. 'Akbar's Relations with Rajput Chiefs and Their Role in the Expansion of the Empire', *Social Scientist*, Vol.22, No.7/8, pp.76-82.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 सिख शक्ति का उद्‌य*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मुगलो के आने से पूर्व का पंजाब

5.3 बाबर के आगमन के समय का पंजाब

5.4 मुगल और सिख धर्मगुरू

5.5 सिख–मुगल संघर्ष

5.6 सिख राज्य की आरंभिक स्थापना

5.7 खालसा पंथ से पूर्व व पश्चात की सिख पहचान

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्न के उत्तर

5.11 संदर्भ

5.0 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि :

- बृहद सामाजिक–राजनैतिक संदर्भ में मुगल पंजाब में किन परिस्थितियों में आये।
- मुगल बादशाहों के साथ सिख धर्म गुरूओं के सम्बन्ध कैसे रहे।
- मुगलों के साथ संघर्ष और प्रांरभिक सिख राज्य की स्थापना।
- सिख पहचान बनाने में खालसा पंथ का महत्व।

5.1 प्रस्तावना

दक्षिणी एशिया के सीमान्त क्षेत्र में राज्यों की स्थापना प्रक्रियाओं में पंजाब का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। उत्तर भारत के गंगा के मैदानी क्षेत्र और अफगानिस्तान में राज्यों के मध्य में स्थित यह क्षेत्र समृद्धि के साथ साथ दोनों ओर से होने वाले हमलों को सहता रहा। अफगान और मुगलों के साथ समकालीन सिख इतिहास लेखन में अंकित जटिल सम्बन्धों के महत्व को जिसे, गुरूनानक जी के प्रादुर्भाव और तत्पश्चात् राणा रंजीत सिंह के अंर्तगत स्थापित खालसा राज के समय, सोलहवीं से अठ्ठारवीं सदी के दौरान उभरे सम्बन्धों को समझने के लिये, रेखांकित किया जाना जरूरी हैं। पंजाब में बाबर की 1526 की विजय से पूर्व, यह क्षेत्र बड़े शहरी केन्द्रों का साक्षी रहा, जो सिंध से मुलतान और दिल्ली तक, पेशावर से लाहौर,

*योगेश स्नेही, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, स्कूल आफ लिबरल स्टडीज, दिल्ली।

लाहौर से सरहिन्द और दिल्ली तक व्यापार मार्गों से प्रमुखता से जुड़ा रहा। ये शहरी केन्द्र, भारत के पश्चिम में मध्य एशिया, परशिया और अरब संसार की संस्कृति और व्यापार के साथ और कश्मीर, राजपूताना, गंगा के मैदानी क्षेत्रों और ढाका सहित पंजाब से जुड़े थे। सल्तनत काल तक मौजूद पंजाब के पांचों दोआबों के बीच के बाड़ (ऊंचे–ऊंचे पेड़ों के वन–बीहड़ इलाके) मुगल काल आते–आते सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तौर पर काफी परिवर्तित हो चुके थे।

5.2 मुगलों के आने से पूर्व का पंजाब

सल्तनत काल के अंर्तगत नाथ सिद्धों वैष्णवों, शाक्त और सूफी परम्पराओं से जुड़े धार्मिक केन्द्रों की बहुतायत रही। स्थानीय साधु–सन्तों और देवताओं से संबंधित धार्मिक स्थलों, यक्ष–मंदिर, धर्मशाला, दरगाह, डेरे, जठेरे, समाधियाँ, खानकाह आदि –इस क्षेत्र के ग्रामीण एवं शहरी दोनों इलाके में फैले हुए थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के आते आते, सल्तनतकालीन व्यापार मार्ग में सूफी समाधियों का एक व्यापक जाल उभर कर आ चुका था, जो प्रथमतः गौरी और गजनवी शासकों के काल में, और बाद में, अधिकांश तुगलक शासन काल में संरक्षण से संभव हुआ। शुरूआती सूफी सन्तों में शेख हुसैन ज़नजानी और शेख अल हुजवीरी 11वीं शताब्दी तक लाहौर मे बस गये थे। बाद में, तुगलकों द्वारा उच और मुलतान की सुहरावर्दी सन्तों की समाधियों से लेकर बाबा फरीद पाकपत्तन, भटिंडा बाबा हाजिरी रतन, हैदर शेख मलेरकोटला वाले, हिसार की सन्त समाधियाँ, महरौली के कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी को संरक्षण प्रदान किया गया। चिश्ती सूफी बाबा फरीद, सभी धार्मिक संबंद्धताओं से परे प्रसिद्धि का एक उदाहरण बने। जो इस बात का भी संकेतक बन गया कि उस क्षेत्र के निर्माण में उनकी समाधि और उनकी कविताओं का प्रभाव रहा। रिचर्ड एम. ईटन ने कृषि–पशुपालकों की जिंदगी को कृषक में परिवर्तित कर जाटो को बसाने में समाधि के दीवानों के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित किया है। जाटों का इस्लामीकरण, कृषि क्षेत्र में विस्तार, और की प्रक्रिया सल्तनत व्यापार मार्गों के आसपास चलती रही। तुगलकों को हिसार जैसे नये शहर बसाये जाने, मुलतान और हिसार के क्षेत्रों में कृषि भूमि को बढ़ाने के लिये नहरों के जाल को विस्तार देने, और स्थानीय राजपूत भाटी वंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भी जाना जाता है। स्थानीय शासन ने इन संबधों को कार्यान्वित करने के लिये क्षेत्र के अभिजात्य वर्ग पर बल का उपयोग किया। इस माहौल को 1398 में तैमूर द्वारा किये गये विध्वंस और तबाही ने बुरी तरह से प्रभावित किया और यहाँ तक कि लोधी शासन भी इसे पुनर्जीवित नहीं कर सका, जिसे सुरिन्दर सिंह ने राज्य–स्थापना का 'तुगलकी–नमूना' बताया हैं।

बाद में, जब बहलोल लोधी दिल्ली पर पकड़ बनाने की योजना बना रहा था, वह मलेर कोटला में शेख हैदर की खानकाह से गुजरा, ऐसा कहा जाता है कि शेख ने बहलोल को दिल्ली प्रदान कर दी। लोधी शासकों ने इस समाधि को संरक्षण प्रदान किया, और सूफी सन्त के साथ दीर्घकालिक पारिवारिक सम्बन्ध भी बनाये। सल्तनत के पूरे कालखण्ड में, इस प्रकार के पवित्र और आपसी सम्बन्धों के आदान–प्रदान ने उस क्षेत्र के स्थानीय आभिजात्य वर्ग के साथ नये सम्बन्धों का आगाज किया, भाई–चारा बढ़ाया जिससे खोखरों के विद्रोह को कमजोर किया गया और मंगोल और कारलुघ के आक्रमणों को भी टोका गया। आज समाज के मध्य नज़र आता सांप्रदायिक विभाजन सुल्तानी शासन के दौरान नज़र नहीं आता है। जैसा कि सुरिन्दर सिंह द्वारा दामोदार रचित हीर राझाँ के मशहूर 'किस्से' की व्याख्या में

दिखाया गया है। यह क्षेत्र मुगल–काल के पूर्व भी व्यापारिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्रियाओं का भी केन्द्र रहा। जाटों के इस्लामीकरण में राज्य–स्थापना की यह प्रक्रिया महत्वपूर्ण रही।

11वीं शताब्दी तक सिंध से पंजाब के लिये जाटों का प्रवास उस क्षेत्र में विशद ऐतिहासिक परिवर्तन भी लाया। मुख्यत उस की ओर बढ़ने और बसने के बाद, कुछ जाट वंश के लोग, सल्तनत काल के समाप्त होने तक, पूर्व की ओर बढ़ने लगे। मुगल–काल के आरंभ होने पर जाटों को जमीदार के रूप में जाना जाने लगा। *आइन–ए–अकबरी* में जाट का संदर्भ जमींदारी और प्रमुख कृषि कार्य संवर्ग से लिया गया। वे लोग मुगल शासन में प्राथमिक रूप से उत्पादक और महत्वपूर्ण योगदानकर्ता थे।

5.3 बाबर के आगमन के समय का पंजाब

सल्तनत–काल की समाप्ति पर, सिरसा और भटिन्डा का व्यापार–मार्ग थार रेगिस्तान के विस्तार के कारण मुश्किल में पड़ने लगा था। इसके कारण जिसे आज ग्रैड ट्रंक रोड कहा जाता है, धीरे–धीरे विकसित होने लगा। शेरशाह सूरी द्वारा परिकल्पित इस सड़क ने पेशावर और मुल्तान को पानीपत, थानेसर सरहिन्द और लाहौर के रास्ते दिल्ली से जोड़ दिया। इस प्रकार, जबकि सल्तनत काल को दक्षिणी पंजाब में तुगलक संरक्षण के लिये चिन्हित किया गया, लोधी शासन के समय तक, लाहौर और दिल्ली के मध्य उत्तरी मार्ग में पड़ने वाले शहरो के सम्पन्न होने की स्थिति बन गई। मध्य पंजाब में इस परिवर्तन का लाभ पंजाब के जाट, अरोड़ा और सारस्वत ब्राह्मण तथा खत्रियों की जातियों को प्रमुखता से मिलने लगा। लोधी वंश के पतन और बाबर के आगमन से इस क्षेत्र की सम्पन्नता में बदलाव आया। बाबर के हमले की आलोचनात्मक टिप्पणी में गुरूनानक (जन्म 1469) ने अपनी *बाबर बानी* में पंजाब में विनाश के लिये लोधी शासन की सुरक्षा प्रदान करने में असक्षमता और बाबर द्वारा लोगों की हत्या करने के कृत्य को दोष दिया। बाद में, मुगल–काल के दौरान सख्त भू–राजस्व प्रशासन की स्थापना के साथ पंजाब में एक नये युग का प्रांरभ हुआ। इस क्षेत्र में मुगलों द्वारा किये गये विनिवेश से नये व्यापारिक और राजस्व के केन्द्रों की स्थापना, मुगल राजमार्ग हाईवे के साथ–साथ व्यापार, यात्राओं, शहरीकरण और धार्मिक पवित्र स्थलों का आविर्भाव हुआ। लाहौर और सरहिन्द के चारों ओर वृहत कृषि–विस्तार इस दौरान प्रमुखता से हुआ।

गुरूनानक का परिवेश एक पवित्र ऊर्जावान काल खण्ड का प्रतिनिधित्व भी करता है, जिसमें उस क्षेत्र में प्रचलित एकेश्वरवादी परिदृश्य, जिसमें लोकप्रिय नाथ, सूफी और सिख धार्मिक सम्प्रदायों के बीच बहस और आपस में टकराहट की संभावनाओं की स्थिति थी, साथ ही अन्य धार्मिक सम्प्रदाय, जैसे वैष्णव, शाक्त, सुन्नी, शिया इत्यादि भी थे। तलवन्डी (पंजाब) के खत्री परिवार में जन्में गुरूनानक के पिता गाँव के प्रधान के मातहत पटवारी का कार्य देखते थे। उनका संयुक्त परिवार भी प्रशासनिक कार्य सम्बन्धी सेवाओं में विस्तृत रूप से लगा हुआ था। उन्होंने अल्प समय के लिये लोधी शासक के अन्तर्गत प्रशासक के रूप में भी कार्य किया। रहस्यवाद की ओर झुके हुए गुरू नानक की जीवनी (जन्मसाखी) हमें बताती है कि वह एक प्रतिभाशाली बालक थे। गुरू नानक के प्रसिद्ध यात्रा विवरणों (उदासी) ने, जो भारतीय उपमहाद्वीप और पश्चिमी एशिया से संबंधित हैं उनके गंभीर और व्यापक धार्मिक दृष्टिकोण को निर्धारित करने में सहायता की। उनके दिखाये गये रास्ते, दी गई शिक्षा के

द्वारा आरंभिक 16वीं शताब्दी में सिख समाज (शिष्य और छात्र) की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। पंजाब में कृषि–पशुपालकों के कृषक बनने की प्रक्रिया गुरू नानक के जीवन काल के समानान्तर चली। आश्चर्य नही है कि उनके द्वारा प्रतिपादित गृहस्थ धर्म ऐसी आर्थिक क्रिया की ओर ले जाता है जो उसे अनुकूल लगा। उन्होंने सूफी समाज की सामूहिक रसोई की प्रथा लंगर को सामाजिक व्यवस्था का अंग बना दिया। गुरु नानक ने समकालीन एकेश्वरवादी कबीर से साझा करते हुए जाति–प्रथा से मुक्त और धार्मिक विशेषताओं के बंधनों से परे एक समाज की परिकल्पना की।

नानक देव के तुरंत बाद के आये चार उत्तराधिकारियों ने उपमहाद्वीप में नानक पंथ का विस्तार किया, यद्धपि यह पंजाब के अधिकतर मैदानी इलाके, सिंध और गंगा के मैदान तक ही प्रभावी रहा। प्रथम चार उत्तराधिकारियों के मुगल शासन के साथ सौहार्द्ध सम्बन्ध रहे। सिख इतिहास बताता है कि उन्होंने करतारपुर गोइन्दवाल और रामदासपुर (जो बाद में अमृतसर कहलाया) को बसाया। ये परिसर शीघ्र ही धार्मिक क्रियाकलापों और समागमों के केन्द्र के रूप में उभरे। कहा जाता है कि 1569 में अकबर ने अपने दौरे के दौरान गुरू अमरदास से मुलाकात के समय गोइन्दवाल में लंगर चखा था। गोइन्दवाल एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल के रूप में जाना गया। गुरू अमरदास ने वहां पर एक बावड़ी का निर्माण कराया। घनिश्ठ शिष्यों को मंजी नियुक्त किया गया जो प्रवचन देते थे। बाद में गुरू रामदास ने मंजी प्रथा को मसन्द (जो गद्दी पर बैठते थे) से प्रतिस्थापित कर दिया । ये लोग बहुत अधिकारयुक्त हुआ करते थे। प्रवचन देने के अतिरिक्त मसन्द से आशा की जाती थी कि वे संगत की व्यवस्था भी देखेंगे और गुरू को मिलने वाले चढ़ावे को भी जमा करेंगे, (दसावन्ध जो किसी भी आय का हिस्सा होता था) जो गुरू को दे दिया जाता था। सिख गुरूओं की आध्यात्मिक और लौकिक शक्ति अकबर के बाद मुगल शासन के लिये शीघ्र ही एक चुनौती के रूप में देखी जाने वाली थी ।

चज, रचना और बारी के दोआब में कृषि कार्य में आये बदलाव का श्रेय अधिकांशत इस काल के दौरान कुओं द्वारा की जाने वाली सिंचाई को जाता है, जो या तो हस्त चालित होते थे, तो अन्य जिसमें लीवर का प्रयोग किया जाता था, कुछ में पशु शक्ति का प्रयोग होता था, से चालित होते थे, जैसे परशियन व्हील (साकिया)। इरफान हबीब तर्क देते हैं कि पंजाब में आरंभिक मुगल शसन में कृषि कार्य के विस्तार में परशियन व्हील का प्रमुख योगदान रहा। यह पंजाब में जाटों के बसने के साथ–साथ हुआ। यद्यपि चेतन सिंह ने इसका श्रेय विभिन्न प्रकार की कुओं की सिंचाई प्रणाली जो चरस, ढेकली या नौरिया थी, को दिया है जिनका इस्तेमाल पानी की गहराई और भूमि की किस्म पर निर्भर था। गुरू अर्जुन (मृत्यु 1606) की अमृतसर के चारों ओर कृषि कार्य में विस्तार में गहरी रूचि को उनके द्वारा निर्मित कराये गये छः पहियों वाले परशियन व्हील (छेहर्ता) में देखा जा सकता है, यहाँ तक कि उस इलाके को भी उसी नाम से जाना जाने लगा। इन सभी कारणों से कृषि उत्पाद में वृद्धि होने लगी और किसानों पर केंद्रीयकृत भू–राजस्व का बोझ बढ़ने लगा। मुगल शासन की इन केन्द्रीकरण की प्रवृतियों को स्थानीय मुखियाओं द्वारा हमेशा पसंद नहीं किया गया, बल्कि उन्होंने इसको उनके पारम्परिक स्वाययता के अधिकार के सामने चुनौती के रूप में देखा। 16वीं शताब्दी की दुल्लामही की कथा के द्वारा सुरिन्दर सिंह इसका वर्णन करते हैं– कि सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब स्थानीय प्रभावशाली लोगों द्वारा एकत्र होने की कोशिश नाकाम हुई तो उनको मुग़लों द्वारा बड़ी बर्बरता से कुचला गया था। मुगल शासक जनजातीय मुखियाओं और रियासतों के राजाओं के साथ सहयोग को प्रमुखता देते थे। बीच के कम

ताकतवर जमीदारों से अपेक्षा की जाती थी कि वे इसमें सहयोगी बनें। गौरतलब है कि इसी दौरान 1598 में, गुरु अर्जुन देव के आमंत्रण पर जब अकबर ने गोइंदवाल इलाके का दौरा किया उसने मानसून के असफल हो जाने के कारण हुई फसल की बरबादी के मद्देनज़र भू–राजस्व (लगान) की राशि माफ कर दी।

बोध प्रश्न – 1

1) मुगलों के आगमन के समय पंजाब की सामाजिक–राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी पंजाब में हुए में कृषि में हुए विस्तार पर एक टिप्पणी दीजिए।

....

....

....

....

5.4 मुगल और सिख धर्मगुरू

अकबर के गोइन्दवाल दौरे को मध्य पंजाब में उठे किसानों के विद्रोह को समाप्त किये जाने के प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है, क्योंकि यह क्षेत्र, मध्य पंजाब, मुगलों की प्रशासनिक और भू–राजस्व की दृष्टि से नियंत्रण बनाये रखने के लिये महत्वपूर्ण था। मुगलों द्वारा नाथ, सूफी और सिख धर्म के पवित्र स्थलों को संरक्षण प्रदान किया जाना भी सामाजिक और राजनैतिक सहयोग निर्मित किये जाने के प्रयासों की तरह भी देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया में, मुगलों ने तत्कालीन प्रचलित सार्वभौमिकता के विचारों को स्वीकार किया और इस प्रकार पंजाब पर शासन करने की वैधता प्राप्त की। पंजाब में शुरुआती मुगल–सिख इतिहास, इस काल खण्ड में मुगल–सिख के आपसी सहयोग का प्रतिनिधित्व करती है। इस गठबन्धन में बदलाव सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के लम्बे समय के दौरान आता रहा, जिसमें मध्यकालीन पंजाब में सम्पत्ति के स्वामित्व, उत्तराधिकार और सार्वभौमिकता की बदलती अवधारणाओं का असर रहा। आश्चर्य नहीं है कि अकबर की मृत्यु के बाद, मुगल न्यायालयों में उत्तराधिकार सम्बन्धी और गुरू रामदास की मृत्योपरान्त (मृत्यु 1581) गुरू गद्दी पर उठे उत्तराधिकार के प्रश्नों में एक प्रकार की समानता दिखाई देती हैं। विद्रोहिओं के गठबन्धन ने सिख गुरूओं के साथ मुगल शासकों के संबंधों का स्वरूप तय किया और उस क्षेत्र के इतिहास की धारा को बदल कर रख दिया। इस मनमुटाव, जो खुसरो (जहांगीर के विद्रोही पुत्र) के गुरू अर्जुन देव से भेंट करने और पृथ्वीचन्द (गुरू रामदास के ज्येष्ठ पुत्र) द्वारा मुग़लों के उत्तराधिकार के युद्ध में रूचि दिखाने और सहयोग देने की वजह से हुआ, का सबसे पहला अंजाम गुरू अर्जुन देव की 'शहादत' के रूप में दिखा ।

प्रारंभिक सिख समुदाय प्रमुखतया एक मौखिक समुदाय था। परम्परानुसार, गुरू के शब्दों (सबदों) के प्रसार में पंजाबी चारणों का महत्वपूर्ण योगदान रहा था। गुरू नानक का भाई मरदाना; उनके मुसलमान रबाबी और गायक, के साथ सहयोग सिख परम्परा से गहरे रूप से जुड़े रहे। मरदाना के उत्तराधिकारी पंजाब के 1947 में हुए विभाजन तक लगातार इस उत्तरदायित्व को निभाते रहे। मंजी और मसन्द की संस्था भी, इसी प्रकार, गुरू के सबदों के प्रसार में और संगत की व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे। *'आदि ग्रन्थ'* के संकलन में सिख सम्प्रदाय को पवित्र धार्मिक पाठ का स्वरूप मिला। गुरू अर्जुन ने सिख गुरूओं और सूफी भक्ति सन्तों की कविताओं का संकलन 1604 में *'आदि ग्रन्थ'* के रूप में करने का महत्वपूर्ण कार्य किया, जिसने विश्व पटल पर सिख समुदाय के उभरते स्वरूप को परिभाषित किया। हर जोत् ओबेराय 'आदि ग्रन्थ' से एक्कीस वर्ष पहले संकलित किये गये *फतेहपुर पाण्डुलिपि* से इसकी आश्चर्यजनक समानता का उल्लेख करते हैं। *फतेहपुर पाण्डुलिपि* मुख्यतः सूरदास और 35 अन्य कवियों, जैसे कबीर, नामदेव, रविदास, परमानंद और कान्हा, के संकलित पदों व भजनों के संकलन से तैयार किया गया है। दोनों ही पाण्डुलिपि उन रागों का उल्लेख करते हैं जिनमें उनको गाया जाना हैं। सिख इतिहास के इन आपस के सम्बन्ध के आयामों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। उदाहरण के लिये पशौरा सिंह का तर्क है कि गुरू अर्जन ने *आदि ग्रन्थ* का अंतिम स्वरूप बनाने के लिये सिख साहित्य के प्रारंभिक उपलब्ध प्रयासों पर कार्य किया। *आदि ग्रंथ* में सिख गुरूओं और मध्यकालीन भक्ति सूफी सन्तों तथा बाबा फरीद, रविदास, रामानंद, भगत भिखन, कबीर और नामदेव के लगभग 6000 पद संकलित हैं। *आदि ग्रंथ* को उसी वर्ष हरमंदिर साहिब के अन्दर स्थापित किया गया, जिसकी नींव का पत्थर 1589 में लाहौर के जनप्रिय सन्त सूफी मियां मीर (मृत्यु 1644) द्वारा रखा गया था ।

वैसे तो गुरू अर्जन की मृत्यु एक रहस्य बनी रही लेकिन सिखों के समकालीन इतिहास को वर्णित करने में एक महत्वपूर्ण तिथि बन गई। इस घटना को शांतिप्रिय धार्मिक परम्परा का उग्र परम्परा में परिवर्तित होने की एक पहचान के रूप में भी देखा जाता है। जे. एस. ग्रेवाल उद्धरित करते हैं कि भाई गुरूदास ने गुरू हरगोविन्द (मृत्यु 1644) द्वारा शुरू की गयी नयी उग्र परम्परा को न्यायोचित माना। जिसमें कहा गया कि बगीचे की सुरक्षा के लिये कठोर और कांटो से भरी किकर की झाड़ियों की जरूरत होती है। मुगलों द्वारा की जाने वाली हिंसा के प्रतिकार के लिये सिख परम्परा में बढ़ती उग्रता, बाद में आने वाले सिख गुरूओं की शहादत को तेज करने वाली थी। यद्धपि यह समझना आवश्यक होगा कि बलिदान (शहीदी या शहादत) पंजाब में मुगल शासन के अंतर्गत कोई नया या अनोखा नहीं था। ईश्वर दयाल गौड़ बताते हैं कि मुगल शासन से पूर्व सल्तनत प्रशासन में पंजाब में बलिदान (शहादत) की परम्परा का लम्बा इतिहास रहा हैं, और भिन्न–भिन्न तरीकों से शहादत दिये जाने की एक वृहत सूचना उपलब्ध है। इनमें प्रेम प्रसंग में शहीद होने वाले सस्सी–पुन्नू और हीर–राझाँ, विद्रोही राजपूत जमींदार दुल्ला–भट्टी, धर्म के लिये शहीद गुरू अर्जन के अतिरिक्त विभिन्न साहित्यिक 'किस्से' और 'वार' से प्राप्त प्रेरणा शामिल हैं। शहादतों की गाथायें उनके लिखे जाने के समय की सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति को समझने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन सभी बलिदान–गाथाओं में एक केन्द्रीय बिन्दु (विषय) है कि राजशाही केन्द्रों विशेषकर दिल्ली और पंजाब में जड़ जमा चुकी विचारधाराओं में आपस में सम्बन्ध रहा है। यह केन्द्र के साथ उपकेन्द्रों के सम्बन्धों की दीर्घ अवधि की आपसी नजदीकियाँ और दूरियों की गाथा है। सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के इतिहासकारों ने इन शहादतों को अपने

इतिहास सम्बन्धी वर्णनों में कई बार संदर्भित किया है। लुईस फेनेच तर्क देते हैं कि जहाँगीर से औरंगजेब तक मुगल शासन का विरोध सिख राज की स्थापना की आरंभिक अवस्था का काल रहा है जो कि मध्य अठारहवीं सदी के बाद सिख बलिदानों की गाथायों में वृहत रूप से महत्वपूर्ण साबित हुआ।

5.5 सिख – मुगल संघर्ष

छठे गुरू के रूप में गुरू हरगोबिन्द की नियुक्ति उग्रता की ओर बढ़ने की सूचक रही है (मीरी का प्रतिनिधित्व अकाल तख्त और पीरी का प्रतिनिधित्व हरमिन्दर ने किया)। लोगों में जनप्रिय सच्चा पातशाह (असली राजा) के रूप में, जिसे सन्त बादशाह (जो मुगल बादशाह अकबर के लिये प्रयुक्त होता था) के स्थान पर सिख गुरूओं के सार्वभौमिकता के आदर्शों लिये इस्तेमाल किया गया। चौथे गुरू रामदास से आगे उत्तराधिकार सोंढी खत्रियों तक ही सीमित रह गया। इसने न केवल सिख गुरूओं की आर्थिक स्थिति को मजबूती दी, बल्कि उनकी राजनैतिक और सैनिक महत्ता को भी मजबूत किया। धीरे–धीरे, किसान (विशेषकर जाट) मध्य पंजाब के सिख गुरूओं की ताकत बनकर खड़े होने लगे, जो सिखों की राजनैतिक सक्रियता को बढ़ाने, उनको सिख की पहचान देने, जो मुगल शासन के विरूद्ध सार्वभौमिकता के विकल्प हेतु महत्वपूर्ण राजनैतिक और धार्मिक भूमिका अदा कर रहा था। जबकि मुगल और सिखों के बीच झड़पे चल रही थीं, सिखों में उत्तराधिकार के प्रश्न पर वैमनस्य भी चलता रहा। हरदीप सिंह श्यान उग्रवादिता की ओर झुकाव को खत्री–सिख समुदाय में क्षत्रियता की स्वीकारोक्ति मानते हैं। इसके विपरीत, डब्लू. एच. मैक्लोयड ने तर्क दिया कि सिख धर्म में जाटों के आ जाने से सिख धर्म सामरिक समुदाय में परिवर्तित हो गया। मुगल शासक, सिख गुरूओं की गतिविधिओं से शीध्र दूरियाँ बनाने लगे विशेषकर गुरू हरराय (मृ.1661) के पश्चात्, जिन्होंने मुगल तख्त के युवराज दारा शिकोह (मृ.1659) को सहयोग प्रदान किया जो अपने छोटे भाई औरंगजेब (मृ.1707) के हाथों उत्तराधिकार की लड़ाई में मारा गया। सिख धर्म के नवें गुरू, गुरू तेग बहादुर (मृ.1675) की गुरूवाई में और औरंगजेब के दिल्ली पर हुकूमत के दौरान सिख–मुगल संघर्ष अपने चरम पर रहा।

गुरू तेग बहादुर जन सभाओं का दौरा कर, नए भजन संगीत रचकर तथा कवियों को दरबार में निमंत्रित कर सिख समुदाय को संगठित करते रहे। उनके इस धार्मिक कदम को अच्छा जन समर्थन मिला। गुरू बराबर नियमित दरबार लगाते रहे। करतापुर और रामदासपुर के उत्तराधिकार सम्बन्धी मामलों ने गुरू को किरातपुर और उसके बाद बिलासपुर के पर्वतीय मुखिया की सीमा के अंर्तगत मखोवल जाने पर मजबूर कर दिया। अपनी पूर्वी दिशा की यात्रा के दौरान, उन्होंने अपने परिवार को पटना में छोड़ दिया जहाँ उनके पुत्र गोविन्द राय का जन्म हुआ। मुगल शासन सिखों की गतिविधिओं से और गुरू की कार्यवाहियों से दूरियाँ बनाकर रह रहा था, हालाँकि गुरू द्वारा स्वयं को सिखों से अपने को एकमात्र सच्चे और निर्भीक और ज्ञानी गुरू के रूप में स्वीकार किये जाने पर जोर दिया जाना औरंगजेब तक पहुँचाया जा रहा था। इसके अलावा 1699 के मुगल शासन के सामान्य आदेश से इस्लाम को छोड़ कर बाकि सभी धर्मों के सभी स्कूलों और मंदिरों को ध्वस्त किये के फरमान से सरहिन्द में तनाव पैदा हो गया, जहाँ एक सिख मंदिर को गिरा दिया गया और उसकी जगह पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया, जिसे सिखों द्वारा बदले में गिरा दिया गया। 1675 में गुरू तेग बहादुर को विद्रोह भड़काने का इल्जाम लगाकर मार दिया गया। गुरू का चाँदनी चौक दिल्ली में यह दोष लगाते हुए कि वह

काश्मीरी ब्राहम्णों को मुगलों द्वारा उनकों इस्लाम में परिवर्तित किये जाने के प्रयासों के विरूद्ध सहयोग कर रहे थे, सर कलम कर दिया गया।

जब वह केवल नौ वर्ष के थे गुरू गोविन्द (मृ.1708) गुरू तेग बहादुर के उत्तराधिकारी बने। किवदंती है कि एक चिश्ती साबरी सन्त भीखम शाह, जो पटियाला के पास स्थित गाँव घूरम के थे, को यह सहज बोध हुआ कि गोविन्द राय जी का जन्म हुआ है, और वह उनके दर्शन के लिये पटना की यात्रा पर गये। वह अपने साथ दो बर्तनों में खीर लेकर गये – जिसमें से एक मुस्लिम के घर से ली गई थी और दूसरी एक हिन्दू के घर से। जब भीखम राय ने गोविन्द राय को खीर समर्पित की तो उन्होंने दोनों बर्तनों को अपने दोनों हाथों से छुआ। पीर ने घोषणा की कि यह बालक हिन्दुओं और मुसलमानों का संरक्षक बनेगा। ऐसे उदहारण मुग़लो और सिखों की तनातनी को नितांत धर्म की जंग पर विवेचित करने की कोशिश को नकारते हैं। गुरू गोविन्द वापस पंजाब आ गए और जहाँ वे शिवालिक की पहाड़ियों में रहकर बड़े हुए और 1665 में उनके पिता द्वारा स्थापित गाँव आनंदपुर में राज करने लगे। शीघ्र ही यह गाँव शहर में परिवर्तित हो गया और जिसे गुरू गोविन्द सिंह द्वारा पर्वतीय मुखियों के हमलों से बचाने के लिये चारों ओर से दीवारों से सुरक्षित किया गया। पर्वतीय मुखिया, जो मुगल शासकों के जागीरदार थे, और गुरू गोविन्द सिंह की उपस्थिति को संदेह की दृष्टि से देखते थे। सिख अपनी आवश्यकताओं के लिये पड़ौसी गाँवो पर निर्भर थे, जिसके कारण इन पर्वतीय जागीरदारों के क्रोध का सामना करना पड़ता था।

सिखों ने फसल की कटाई के त्यौहार बैसाखी के समय प्रति वर्ष आनंदपुर में एकत्र होना आरंभ कर दिया। 1699 के आरंभ में, इसी दिन, गुरू गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ (पवित्र सिखों का समुदाय) की नींव रखी। खालसा की नींव रखे जाने का आंरभिक समारोह (खाण्डे की पहुल) उस क्षेत्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसमें सिख समुदाय के लोगों को पहचान के पाँच बाह्य चिन्हों का धार्मिक संस्कार दिया गयाः केश (बालों को ना काटा जाना), कंघा, कड़ा (कच्चे लोहे का चूड़ा) कच्छा (अंर्तवस्त्र) और कृपाण (तलवार)। एक आचार–संहिता (राहित) दी गई और उनको एक ही पहचान क्षत्रिय दी गई (सिंह या कौर, चाहे वह किसी भी पृश्ठभूमि से आते हों)। सिखों को खालसा धर्म संस्कार दिया गया जिसमे गुरुओं की वंशावली से वैधता देने की भी कोशिश की गयी। खालसा जिसमें अधिकतर सामान्य किसान और जमींदार थे, मुगलों की सार्वभौमिकता के विरोध का प्रतीक बन गया। मुग़लों के दक्षिण में व्यस्त हो जाने के कारण दिल्ली से मुगल शासकों की अनुपस्थिति ने खालसा सिख के अंर्तगत वैकल्पिक सार्वभौमिकता की संभावना को मजबूत किया। निक्की गुरिन्दर सिंह ने इसे नारी के दृष्टिकोण से देखा, जहाँ पर नर और नारी दोनों को अमृत (मीठा पानी) चखाया जा सकता था। ऐसा माना जाता है कि यह अमृत दुधारी तलवार से मथ कर बनता था। वह अमृतसर की माता भागो की प्रेरणादायक कहानी का वर्णन करती है, जिसने लोगों को गुरू गोविन्द सिंह की तरफ से मुगलों के विरूद्ध युद्ध करने के लिये एकत्र किया। 1705 में वह स्वयं भी उनकी ओर से लड़ी और मुक्तसर के युद्ध में घायल हुई।

1688 और 1705 के दौरान, गुरू गोविन्द सिंह ने एक दर्जन से ज्यादा लड़ाईयाँ लड़ी। 1704 में मुगलों द्वारा आनंदपुर पर घेराबंदी के दौरान, उनकों आनंदपुर छोड़ कर जाना पड़ा। उनके छोटे दो पुत्र और गुरूजी की माता को सरहिन्द और मलेरकोटला की सेना ने पकड़ लिया और गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। सिरहिंद के मुगल सरदार वजीर खान, ने मलेरकोटला के नवाब को अवसर दिया कि वह सिखों से युद्ध में मारे गये अपने दो भाइयों की मृत्यु का बदला गुरू गोविन्द सिंह के दो पुत्रों को मार कर ले। शेर मोहम्मद खान ने यद्यपि गुरू के

निर्दोष बेटों को सजा देने से इनकार कर दिया। तथापि निरंकुश वजीर खान ने आदेश दिया कि उनको जीवित 'सिरहिंद की दीवार' में चुन दिया जाये। शेर मोहम्मद खान ने इसका प्रतिरोध किया और जाहिर तौर पर इस नृशंसता की निंदा करते हुए औरंगजेब को पत्र (जिसे *हा दा नारा* कहा जाता था) लिखा। यद्यपि गुरू के बेटों को नहीं बचाया जा सका, न ही इस घटना के बाद औरंगजेब अधिक दिन तक जीवित रहा, किन्तु शेर मोहम्मद की इस भावना की गुरू द्वारा प्रशांसा की गई जिन्होंने घोषणा की, कि 'उसका वंश सदा हरा रहेगा'। बाद में शेर मोहम्मद खान सिखों के विरूद्ध मुगलों को सक्रिय सहयोग देने से बचता रहा। जब गुरू गोविन्द सिंह के शिष्य बन्दा बहादुर (मृ॰1716) ने उनके पुत्रों के उत्पीड़न का बदला लेने के लिये सिरहिंद का विनाश किया, तब उसने मलेरकोटला पर चढ़ाई नही की।

बोध प्रश्न – 2

1) मुगल शासकों और सिख गुरूओं के सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) मुगल और सिखों के बीच संघर्ष पर टिप्पणी दीजिए।

....

....

....

....

5.6 सिख राज्य की आरंभिक स्थापना

अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में गुरू गोविन्द सिंह दक्षिण की ओर चले गए। मुगल उत्तराधिकारी बहादुर शाह के साथ सम्बन्ध सुधारने के प्रयास विफल होने पर गुरू को 1708 में नांदेड़ में एक पठान द्वारा मार दिया गया। मृत्यु से पहले, गुरू गोविन्द सिंह ने *आदि ग्रंथ* के विस्तृत स्वरूप को स्थापित कर दिया और उसे ही गुरू (*गुरू ग्रंथ* के रूप में) नामित कर दिया। इसके साथ ही गुरू के उत्तराधिकारी की परम्परा समाप्त हो गई। बन्दा बहादुर जो गुरू को नांदेड़ में मिला था, वह उनके पदचिन्हों पर चलकर पंजाब की ओर चल दिया। उसको सिखों को संबोधित हुकुमनामें (पत्र) भी दिये गये थे और कहा गया था कि उसका सहयोग करें। सिख इतिहास में ऐसा कहा जाता है कि वह पंजाब गुरू गोविन्द सिंह के बालकों की हत्या का बदला लेने के लिये पहुँचा। यह बात धाधी (चारणों) द्वारा प्रति वर्ष 'शक सरहिन्द' के नाम से फतेहगढ़ साहिब में शहीदी जोर मेला में और कई मौकों पर लगातार दोहराई जाती थी। बंदा और उसके सहयोगी हिसार सरकार से प्रविष्ट हुए और 1709 तक इतनी अधिक शक्ति अर्जित कर ली कि सिरहिन्द सरकार के अंर्तगत समाना शहर को रौंद सके। समाना को धूल में मिला दिया गया और इसके हजारों बाशिंदों को मार दिया गया।

1707 में सरहिन्द का लूटा जाना मुगल नियंत्रण वाले पंजाब के लिये एक बड़ा आघात था। यद्यपि इस पर मुग़लों का पुनः कब्ज़ा हुआ, परन्तु 1712 में मुगलों के हाथ से फिर निकल गया। मुगलों की सम्पन्न धरोहर किला, आवास, खानकाह, आदि को ध्वंस्त किया गया, मस्जिद को भी नहीं बख्शा गया।

दिल्ली सूबे के उत्तरी भाग में युमना के दोनों ओर के बड़े हिस्सों पर बंदा के सिखों का नियन्त्रण था। उन्होंने जो पंजाब के दो बड़े क्षेत्र; बारी नदी के ऊपरी दोआब और जालंधर सरकार पर मुगल नियंत्रण को भी खतरा पैदा कर दिया था। सिंध सागर दोआब और पंजाब के दूसरे हिस्सों के जमींदार भी विद्रोह करने लगे थे, यद्यपि अभी बंदा से जुड़े नहीं थे। मुजफ्फर आलम बताते हैं कि बंदा ने एक ऐसे विद्रोह की आगवानी की जो मुख्यतया जाटों का था, जो उस समय शक्तिशाली जमींदार और कृषि सम्पत्ति के मालिक थे, जिनको कृषक समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था। जाटों के अतिरिक्त परम्परा से मैला ढ़ोने वाले निम्न जाति का एक वर्ग भी और अन्य निम्न जातियां भी बंदा के साथ हो गई। अपने प्रभुत्व के बढ़ने के एक वर्ष के भीतर बंदा के घुड़सवारों की सेना की संख्या बढ़ कर चार–पाँच हजार और पैदल सैनिक सात–आठ हजार से बढ़कर तीस–चालीस हजार हो गये। उसने मुगल बिचौलियों को बेदखल कर लौहगढ़ में राजगद्दी बनाई। उसने सिक्के चलाये, हुक्मनामें जारी किये और स्वयं को सच्चा पातशाह घोषित किया। पर्वतीय मुखिया लोग जिनको पहले मुगलों ने अपने आधीन कर रखा था, जो वार्षिक नजराने पेश करते थे, सभी सिखों के साथ आ गये। इन मुखियाओं ने शाही फरमानों का खुलकर विरोध शुरू कर दिया, बंदा के सिखों को शरण और अक्सर हथियार और घोड़ो से मदद की।

मुगल मदद–ए–माश रखने वाले, जो बुरी तरह प्रभावित थे और जिनसे सभी सुविधायें छीन ली गई थीं, सभी बंदा के विरूद्ध अब्दुस समद खान के नेतृत्व तले आ गये। धीरे–धीरे गैर सिख जाट और गैर जाट–जमींदार, खत्री और गूजर स्वयं को अकेला और पृथक महसूस करने लगे। विद्रोह के कारण व्यापार मार्गों में व्यवधान आया जिससे अमीर, व्यापारियों, साहूकारों, कपड़े के व्यापारियों, बुनकरों आदि जो मुगल शासन में लाभार्थी हुआ करते थे, सभी को अत्याधिक हानि हुई,। खत्री समाज, प्रदेश के महत्वपूर्ण इजारेदार हुआ करते थे। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में लिखते हुए, गणेश दास वडेरा बताते है कि बंदा के कार्यकाल में भी करों का बोझ उतना ही था, जितना मुगल शासन में हुआ करता था। बहादुर शाह की मृत्यु के बाद (मृ.1712) नये बादशाह जहांदार शाह (मृ.1713) ने पर्वतीय मुखियों के प्रति नरम नीति का पालन किया। शिवालिक पहाड़ियों के पूर्व की ओर सिखों को अपनी पैठ न बनाने देने के फरूख सियार के प्रयासो के कारण धीरे–धीरे बन्दा को गुरूदासपुर और बारी दोआब तक ही सीमित कर दिया गया। सन् 1715 में, अब्दुस समद खान, लाहौर के प्रशासक के नेतृत्व में उसकी सेना ने, बंदा के सिखों को गुरूदासपुर नांगल में रोक लिया और गांव को कब्जे में ले लिया। दिसम्बर 1715 में मुगलों ने सिखों को कैद करना शुरू किया और 1716 में जून में दिल्ली में शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की मजार के निकट बंदा को मार दिया गया। इस घटना ने मध्यकालीन पंजाब में पहले सिख राज्य की स्थापना के लिये भीतर से पनपे अन्य प्रयासों की सफलता को समाप्त कर दिया।

1719 में फारूख सियर की मृत्यु को मुगल साम्राज्य के विघटन के आरंभ के लिये भी जाना जाता है। उसका उत्तराधिकारी मोहम्मद शाह अपनी मृत्यु 1748 तक अगले बीस साल तक ऐश करता रहा। आर्थिक कठिनाईयाँ फिर भी चलती रही, क्योंकि शासक के अंर्तगत भूमि

(खलीसा) से आय घटती गई, क्योंकि शाही खजाने नियमित तौर पर लगान की किस्तें भेजने में प्रांतीय प्रशासक गोलमाल करने लगे थे। मुगल शासक साम्राज्य की सीमाओं पर से अपना नियंत्रण खोते जा रहे थे। इस काल खण्ड में मुगल शासक दख्खिन पर अपना नियंत्रण कमजोर पा रहे थे, क्योंकि (1725 से दख्खिन के मुगल वायसराय) निजाम–उल–मुल्क आसफ जाह दख्खिन के आभासी शासक बन चुके थे। मराठाओं ने भी इसी प्रकार गुजरात और मालवा को अपने अधिकार में कर लिया था, और अपना प्रभावी नियंत्रण राजस्थान में चंबल नदी तक बढ़ा लिया था। 1738 में, परशिआ के शाह नादिर शांह (मृ॰1747) ने कंधार और काबुल पर कब्जा कर लिया। शीघ्र ही 1739 में, वह मुगल प्रान्त लाहौर में प्रवेश कर गया। उसने जकारिया खान को हरा दिया। जकारिया खान की गवर्नर की पदवी 20 लाख रूपये मिलने पर पुनः नियमित कर दी गई। इसके बाद नादिर शाह ने सिरहिंद में मुगल सेना को हराया और जल्दी ही दिल्ली पहुँच गया। वहाँ उसने कत्ले–आम का आदेश दिया और लोगों पर जीवन रक्षा कर लगाया। ऊँटों और घोड़ों की लम्बी कतारों में लूट का सामान लाद कर उसने दिल्ली छोड़ दी। 1745 में जकारिया खान की मृत्यु के बाद लाहौर के गवर्नर की स्थिति में गिरावट आ गई। इसका कारण मुगल बादशाह मुहम्मद शाह की सनक कि वह पूर्व गवर्नर के बेटे को नामित नहीं करना चाहते हैं, भी रहा। इसने अहमद शाह अब्दाली की स्थिति को मजबूत किया जिसने 1747 में नादिर शाह के आधीन पूर्वी राज्यों पर अपना दावा छोड़ दिया था। उसने शीघ्र ही लाहौर पर कब्जा कर लिया। वह सरहिंद की ओर बढ़ा जहाँ उसे हार मिली और जिसके कारण उसने कदम पीछे हटा लिये। 1752 में उसने लाहौर कब्जा लिया और फिर एक साल बाद ही अहमद शाह अब्दाली ने लाहौर प्रान्त पर कब्जा कर लिया इसके साथ ही मुलतान, काश्मीर और सिरहिंद की सरकार भी हासिल कर ली। पंजाब अब अफगानों के नियंत्रण में आ गया और अब्दाली के बेटे तैमूर शाह को लाहौर का गवर्नर नियुक्त किया गया।

मुगल शासन पर बढ़ते दबाव के बावजूद भी सिखों ने छापेमारी की लड़ाई से अपना अस्तित्व बनाये रखा, ग्रामीण इलाकों में छोटे गुटों में घूमते रहते, मुगल शासकों और उनके मित्रों सहयोगियों को छेड़ते रहे और विध्वंस करते रहे। जे. एस. ग्रेवाल रेखांकित करते है कि किस प्रकार विशेषकर दीवाली और वैसाखी के उत्सवों के दौरान अमृतसर खालसा सिखों के लिये घूमने मौज करने का केन्द्र बन गया था। सिखों को नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली जैसे अफगानों के हाथों भी नुकसान उठाना पड़ा। इतना होने के बाद भी वे बच गये और मध्य अठारहवीं शताब्दी तक उनकी संख्या बढ़ गई। शक्तिशाली मुखिया जैसे जस्सा सिंह अहलूवालिया (1765 में) ने स्वयं की सार्वभौमिकता घोषित करते हुए लाहौर में सिक्के भी चलाये। इन मुखियाओं ने नई संस्थायें भी विकसित की जैसे 'राखी' (अन्न उत्पादन में हिस्सा देने के एवज में किसानों का संरक्षण), 'मिस्ल' (मुखिया के नेतृत्व में स्वतंत्र संघ), दल खालसा (बड़े संघों का संगठन) और 'गुरूमाता' (गुरू के संकल्प या आम सहमति जो सामान्यता अमृतसर में आयोजित होती थीं), जो उनकी बिरादरी पर आधारित समानता से जुड़े पावक सम्बन्ध होते थे। ये सभी पंजाब में राज्य की स्थापना के लिये वैचारिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग थे। इस प्रकार के बारह संघ (मिस्ल) हैं, जिनमें से अहलूवालिया संघ (जस्सा सिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में), सुकेर चकिया मिस्ल (चरत सिंह और बाद में उनके पुत्र रंजीत सिंह के नेतृत्व में, जिन्होंने 1799 में लाहौर में खालसा राज स्थापित किया था), भांगी मिस्ल (हरी सिंह भांगी के नेतृत्व में), कन्हैया मिस्ल

(जय सिंह के नेतृत्व में), रामगरहिआ मिस्ल (संघ) (जस्सा सिंह राम गरहिआ के नेतृत्व में) प्रभावी हुआ करते थे। उन सब में सर्वाधिक शक्तिशाली रंजीत सिंह थे जिन्होंने कमजोर मिस्लों को अपने प्रभाव में लिया और गठबन्धन बनाये। उसका खालसा राज तत्कालीन सामाजिक स्तरीकरण (जातियों के आधार पर), साथ ही साथ सिख गुरूओं द्वारा दिये गये नये वैचारिक ढ़ाचें के मिशन का प्रतिनिधित्व करता था। खत्री और उदासी सिखों ने इस ढांचे के निर्माण में महत्वपूर्ण कार्य किया, जिनकों नये राज्य द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। वे विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के स्वभाविक संरक्षक थे।

5.7 खालसा पंथ से पूर्व व पश्चात की सिख पहचान

सिख इतिहास के प्रारंभिक स्रोत्र जनम साखी रहे हैं, गुरू नानक के जीवन काल की कहानियाँ और जीवनी और अन्य भक्त, सन्त और फकीर तथा उनकी कवितायें आदि। इन जीवनियों को अधिकांश सत्रहवीं और अठारहवी शताब्दी में लिखा गया था। भाई गुरूदास भल्ला (मृ॰1657) ने सिख गुरूओं की रचनओं पर *वार* (विवरण–टीके) लिखे। मध्यकालीन पंजाब से जुड़े अधिकतर स्रोत्र कविताओं के रूप में हैं। यही बात सिख गुरूओं द्वारा रचित साहित्य के लिये भी सही है; *आदि ग्रंथ* से *दशम ग्रंथ* तक, पंजाबी से ब्रज और परशियन तक। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ से यह प्रयास किया गया कि सिख इतिहास उसके अपने ही इतिहासकारों की जुबानी लिखा जाय, जिसमे मुख्यतः अठारहवीं शताब्दी में लिखे गए गुरबिलास की परंपरा बनी। इनमे साहित्य सेनापति की *'गुरू शोभा'* (1711 के लगभग पूर्ण किया गया) खास स्थान रखती है । अन्य स्रोत्रों में चौपा सिंह के *'रहितनामा'* जो अठारहवी शताब्दी के मध्य आचार संहिता के एक रूप में नज़र आता है। अन्ने मरफी ने रेखांकित किया है कि इन स्रोत्र का खास जोर इतिहास में गुरू गोविन्द सिंह के चरित्र का उन्मुखीकरण करना रहा और इसलिये यह सिख इतिहासकारों की ऐतिहासिक सोच और उनकों संरक्षण देने वालों की दृष्टि का परिचायक रहा हैं। सेनापति मुख्य रूप से आनंदपुर साहिब की सार्वभौमिकता और उसके धार्मिक प्रभाव के लिये ही चिंतित दिखे। राजनैतिक सार्वभौमिकता पर उनका ध्यान नहीं था। उनका साहित्य समाज पर गुरू की सार्वभौमिकता की चिन्ता करता है न कि राज्य की स्थापना की। खालसा के *'राहित'* साहित्य से इसका और प्रमाण भी मिल जाता है जो सिख समुदाय के शैशव काल को परिभाषित करता है। *राहित* साहित्य विभिन्न विषयों से पूर्ण है – गुरू के संबंधी जनों के प्रति आदर, अन्य धर्मों के, समूहों के पवित्र स्थलों की यात्रा या प्रवेश पर निषेधाज्ञा आदि। ये साहित्य मूलतः स्मृति और जीवन के संदर्भ में स्थापित किया गया है।

सिख की पहचान केवल खालसा में ही स्पष्ट की गई हो ऐसा भी नहीं है। अन्य बहुत से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्रारंभिक सिख आंदोलन से जुड़ा हुआ है जैसे 'नानक पंथ', 'निर्मल पंथ', 'गुरू सिख' और 'गुरूमुख मार्ग'। 1699 के पश्चात, खालसा सिख 'गुरूमुख' के नाम से जाने गये, और अन्य सभी को 'मनमुख' की श्रेणी में रखा गया। अठारहवीं सदी के मध्य से खालसा से इतर सिख 'सहजधारी' कहलाये गये, जो नानक पंथी और 'उदासी' थे। आधुनिक सिख की पहचान कई रूप में हुई – जैसे खालसा, नामधारी, निरंकारी, निर्मला निहंग, अमृतधारी, केशधारी, मोना, सहजधारी, गुरूमुख, महजबी आदि। इनमें से बहुत सी एकल नहीं रही बल्कि एक दूसरे से समाहित हो गई।

बोध प्रश्न – 3

1) सिख राज्य की स्थापना के लिये उत्तरदायी कारण क्या थे ?

....

....

....

....

2) सिख पहचान की प्रक्रिया और उसमें खालसा के योगदान पर एक टिप्पणी दीजिये।

....

....

....

....

5.8 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में सिख प्रभाव के उदय पर विचार किया। कृषि–कार्य के विस्तार और उनके परिणाम स्वरूप विशेष कर जाट किसानों के मध्य आई सम्पन्नता ने क्षेत्रीय पहचान के अभ्युदय और उसके मजबूत किये जाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगलों के आगमन और धीरे–धीरे मुगल साम्राज्य के पुख्ता होने में हमने केन्द्रीकृत राजनैतिक स्वरूप के आविर्भाव को देखा। तदनन्तर, क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने मुगल प्रशासन को चुनौती देना आरंभ किया, जो पंजाब के मामले में सिख पहचान के अभ्युदय से आसान हो गया। खालसा के बन जाने के बाद राजनैतिक लामबन्दी अधिक शक्तिशाली ढंग से होने लगी और अंततः सिख राज की स्थापना में परिणित हुई।

5.9 शब्दावली

उदासी – गुरू की प्रसिद्ध यात्रायें

जन्मसखी – गुरू नानक की जीवनियाँ

लंगर – सामूहिक रसोई

बावली – कुआँ

मसन्द – जो गद्दी पर बैठता है

संगत – समागम – समुदाय

बानी – गुरू के शब्द (सबद)

शहीदी या भाहादत – बलिदान

छरबार – राज–दरबार

खाण्डे की पहुल – खालसा में प्रवेश का उत्सव

मिस्ल – मुखिया के नेतृत्व में स्वतंत्र संघ

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1) 5.3 भाग कृप्या देखें, यह अपेक्षा की जाती कि उत्तर में सोलहवीं शताब्दी में राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों और उनके पनपने पर प्रकाश डाला जाये।

2) भाग 5.2 कृप्या देखें, यह अपेक्षा की जाती है कि इस इकाई में क्षेत्रीय पहचान को आकार देने में कृषि उपज के विस्तार और सिंचाई साधनों के योगदान को स्पष्ट किया जाये।

बोध प्रश्न – 2

1. कृप्या 5.4 भाग देखें। मुगल शासकों और सिख गुरूओं के बीच सम्बन्धों का एक लम्बा इतिहास रहा है, इसलिये यह अपेक्षा की जाती है इस सम्बन्ध में एक छोटा संक्षिप्त विवरण प्रास्तुत किया जाए।

2. भाग 5.5 देखें। मुगल बादशाहों और सिख गुरूओं के बीच संघर्ष के लिये जिम्मदार कारणों की सूची लम्बी हैं। आपका उत्तर इसकी परीक्षा करे कि संघर्ष का राजनैतिक चरित्र मुगल सार्वभौमिकता के राजनैतिक कारणों के इर्द–गिर्द घूमता रहा।

बोध प्रश्न – 3

1) भाग 5.6 देखें। उत्तर में राज्य की स्थापना की प्रक्रिया पर विस्तृत टिप्पणी दी जाये। किस प्रकार धीरे–धीरे सिख राजनीति ने राज्य का स्तर प्राप्त किया।

2) भाग 5.7 देखें। खालसा के महत्व को प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया जाये कि किस प्रकार खालसा की पहचान स्पष्ट करने में संप्रदाय को चिन्हक प्रदान किये गये।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Alam, Muzaffar. 2001. *The Crisis of Empire in Mughal North India: Awadh and the Punjab 1707-1748*. New Delhi: Oxford University Press.

Fenech, Louis E. 2005. *Martyrdom in the Sikh Tradition: Playing the 'Game of Love'*. New Delhi: Oxford University Press.

Gaur, Ishwar Dayal. 2009. *Society, Religion and Patriarchy: Exploring Medieval Punjab Through Hir Waris*. New Delhi: Manohar.

Grewal, J. S. 2002. *Sikhs of the Punjab*. New Delhi: Cambridge University Press.

Irfan, Habib. 1999. *Agrarian System of Mughal India 1556-1707*. New Delhi: Oxford University Press.

Jakobsh, Doris R. eds. 2010. *Sikhism and Women: History, Texts and Experience*. New Delhi: Oxford University Press.

McLeod, W. H. 2007. *Essays in Sikh History, Tradition and Society*. New Delhi: Oxford University Press.

Murphy, Anne. 2012. *Materiality of the Sikh Past: History and Representation in Sikh Tradition*. USA: Oxford University Press.

Singh, Chetan. 1991. *Region and Empire: Punjab in the Seventeenth Century*. New Delhi: Oxford University Press.

Singh, Pashaura. 2003. *Guru Granth Sahib: Canon, Meaning, And Authority.* New Delhi: Oxford University Press.

Singh, Surinder. 2020. *The Making of Medieval Punjab: Politics, Society and Culture c.1000-c.1500*. New Delhi: Manohar.

Syan, Hardip Singh. 2014. *Sikh Militancy in the Seventeenth Century: Religious Violence in Mughal and Early Modern India*. London: I.B. Tauris.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY